ISSN-0971-8397

योजना

अप्रैल 2010 | विकास को समर्पित मासिक | मूल्य : 10 रुपये

जलवायु परिवर्तन

अब उपलब्ध है

वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

भारत 2010

मूल्यः 345 रुपये

देश के विकास की
विश्वसनीय और अद्यतन जानकारी के लिए

* अर्थव्यवस्था
* विज्ञान और तकनीक
* सामाजिक विकास
* राजनीति
* शिक्षा
* कला और संस्कृति

अपनी प्रति यहां से खरीदें :

हमारे विक्रय केंद्रः • **नयी दिल्ली** (फोन 24365610, 24367260) • **दिल्ली** (फोन 23890205) • **कोलकाता** (फोन 22488030) • **नवी मुम्बई** (फोन 27570686) • **चेन्नई** (फोन 24917673) • **तिरुअनंतपुरम** (फोन 2330650) • **हैदराबाद** (फोन 24605383) • **बंगलुरू** (फोन 25537244) • **पटना** (फोन 2683407) • **लखनऊ** (फोन 2325455) • **गुवाहाटी** (फोन 26656090) • **अहमदाबाद** (फोन 26588669)

प्रतियां प्रमुख पुस्तक केंद्रों में भी उपलब्ध हैं

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:
व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग,
सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली
फोन. 011–24365610, 24367260, फैक्सः 24365609

ईमेलः dpd@mail.nic.in
dpd@sb.nic.in
वेबसाइटः www.publicationsdivision.nic.in

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

योजना

वर्ष : 54 • अंक : 4 • अप्रैल 2010 • चैत्र-वैशाख, शक संवत 1932 • कुल पृष्ठ : 56

प्रधान संपादक
सोनम थरगे

वरिष्ठ संपादक
राकेशरेणु

संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय

538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : exeed.yojana@gmail.com
yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
जे.के. चंद्रा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir_icm@yahoo.co.in

आवरण : **साधना सक्सेना**

इस अंक में

संपादकीय	–	3
कोपेनहेगन के आगे वैश्विक तपन	नम्रता काला अलार्क सक्सेना	5
क्या है कार्बन फुटप्रिंट?		8
भारतीय पर्यावरण कानून और जलवायु परिवर्तन	शिजू एम. वी.	9
जलवायु परिवर्तन के संभावित परिणाम	अरविन्द सिंह	11
विकासशील देशों की भूमिका	ओ.पी. शर्मा	15
कृषि क्रियाओं में सुधार : वैश्विक तपन में उतार	चन्द्रभानु	18
जलवायु परिवर्तन : कारण और प्रभाव	प्रांजल धर	23
पानी की समस्या	सुभाष सेतिया	29
क्याा आप जानते हैं : ग्रीनहाउस गैस में कमी की क्योटो प्रक्रिया	–	33
विश्व के समक्ष कड़ी चुनौती	कनक शर्मा	35
जहां चाह वहां राह : जलवायु परिर्वन का मुक़ावला	अविनाश सोमकुवर	37
ई-क़चरे के ढेर में दब न जाएं हम	दिलीप मंडल	39
सौर ऊर्जा के विकास के प्रयास	सुरेश अवस्थी	43
ग्राम न्यायालय - एक अवलोकन	जगदीश प्रसाद भारती	46
स्वास्थ्य चर्चा : टाइफाइड ज्वर	राकेश सिंह	49
ख़बरों में	–	51
नये प्रकाशन : मानवाधिकार : नयी दिशायें	ब्रजेश कुमार	52

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली-110066 दूरभाष : 26100207, 26105590, तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं :- सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : 100 रु. **द्विवार्षिक :** 180 रु.; **त्रैवार्षिक :** 250 रु.; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** 500 रु.; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** 700 रु.

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए 'योजना' उत्तरदायी नहीं है।

आपकी राय

उपयोगी अंक

योजना का 'भारत में बैंकिंग' अंक बहुत ही प्रभावशाली लगा। आज भी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग के फायदे तथा नियम से ग्रामीण अनजान हैं। फरवरी '10 अंक से भारत के ग्रामीण लोगों को अच्छी-खासी मदद मिलेगी एवं यह रोज़गारोन्मुखी साबित होगी। इस अंक में डीएनए एवं योगासन पर लेख बहुत ही ज्ञानवर्धक लगे।

राकेश छाजेड़ (ज्योति)
नोरखा, राजस्थान

बैंकिंग की गुणवत्ता सुधारें

योजना का फरवरी अंक पढ़ा। बैंकिंग पर तथ्यात्मक, उपयोगी, मानक एवं महत्वपूर्ण आलेखों के समावेश से यह अंक बैंकिंग व्यवस्था के बहुआयामों को समझने में अति सहयोगी सिद्ध हुई है। पाठकों के लिए इस विशेष अंक का अध्ययन लाभकारी होगा।

भारत में बैंकिंग प्रणाली की नींव अंग्रेज़ी शासन के दौरान पड़ी। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पूर्व बैंक मात्र मौद्रिक लेन-देन का माध्यम माने जाते थे किंतु आज बैंकों की भूमिका व्यापक बन चुकी है। देश की सामाजिक-आर्थिक प्रगति में बैंकों का योगदान उत्कृष्ट रहा है। यह आर्थिक निर्भरता एवं सामाजिक न्याय का प्रतीक बन चुकी है। बाहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी प्रगति सराहनीय है। जहां तक बैंकिंग प्रणाली की प्रासंगिकता का प्रश्न है, यह सदैव बढ़ती जाएगी। आवश्यकता इस बात की है कि बैंकिंग सेवा की गुणवत्ता को सुधारा जाए। अन्यथा, यह मानव कल्याण में सक्रिय एवं सक्षम भूमिका अदा करने में विफल हो जाएगी। इस दिशा में संपादकीय में सुझाए गए मार्ग प्रभावी हैं।

'स्वास्थ्य चर्चा' और 'क्या आप जानते हैं?' स्तंभों के अंतर्गत प्रकाशित सामग्री क्रमशः जीवन में स्वास्थ्य की महत्ता एवं विज्ञान-प्रौद्योगिकी की प्रक्रिया को संतुलित रूप में रेखांकित करती है।

प्रवीण कुमार शर्मा
ई-मेल : prabinkr.s@gmail.com

बैंकों का रवैया मैत्रीपूर्ण नहीं

योजना के फरवरी '10 अंक में प्रकाशित आलेख बैंकिंग क्षेत्र की विभिन्न कोणों से पड़ताल करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार उपलब्ध कराने में राष्ट्रीयकृत बैंकों की महती भूमिका रही है। देश की आधारभूत अवसंरचनाओं के विकास में भी बैंकों ने अविस्मरणीय योगदान किया है। इन सबके बावजूद राष्ट्रीयकृत बैंकों का अभी भी जनता के साथ स्वामी-भाव बना हुआ है, अभी भी इन बैंकों का जनता के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार नहीं होता।

वीरेन्द्र परमार
एन.एव.-4, फरीदाबाद

प्रासंगिक अंक

'भारत में बैंकिंग' पर केंद्रित *योजना* का फरवरी अंक प्राप्त हुआ। भारतीय बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ और सशक्त बनाने के लिए बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है ताकि वे बाज़ार की मांग के अनुसार काम कर सकें और भारत को जिस तरह के विकास की अपेक्षा है उस तरह के विकास में सहयोग दे सकें। संपादकीय में बैंकिंग क्षेत्र का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जिससे अनेक जानकारियां प्राप्त हुईं। इसके अतिरिक्त के. आर. कामथ, प्रांजल धर और वेद प्रकाश अरोड़ा के आलेख बहुत सूचनाप्रद हैं। *योजना* के इस उपयोगी व प्रासांगिक अंक के लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार करें। आशा है, इसी प्रकार के बेहतरीन अंक भविष्य में भी पढ़ने को मिलते रहेंगे।

कुमार अवकाश, कंकड़बाग, पटना

मृगतृष्णा बने उद्देश्य

'भारत में बैंकिंग' विषय पर *योजना* फरवरी'10 अंक वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारतीय बैंकों की सही तस्वीर प्रस्तुत करता है। बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी बैंकों का आगमन भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के लिए नयी चुनौती बनकर उभरकर सामने आ रही है। बैंकों को जहां एक तरफ मध्यम और निम्न वर्ग के लोगों को सेठ-साहूकारों से मुक्त कराना है वहीं दूसरी तरफ रुपये को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मज़बूत करना है। लेकिन आज़ादी के बाद निचले स्तर तक मज़बूती के लिए सहकारी संघों के रूप में कार्यरत ग्रामीण बैंकों के मूलभूत उद्देश्य मृगतृष्णा बनकर रह गए हैं क्योंकि आज भी ग्रामीण जन अपने को दलालों, चाटुकारों और भ्रष्टाचारियों के मकड़जाल से मुक्त नहीं कर पाया है। ऐसे में सहकारी संघों के रूप में कार्यरत बैंकों की तरफ भी ध्यान देना होगा।

श्यामानंद पाण्डेय
गौरीबाज़ार, देवरिया, उ.प्र.

इन विषयों पर सामग्री दें

योजना का नियमित पाठक हूं। आपसे निवेदन है कि पत्रिका में निम्नलिखित विषयों पर विशेष अध्ययन सामग्री दें। कृषि की नयी प्रणाली और पर्यावरण पर इसका प्रभाव, भारत में भूमि सुधार, भारत की कृषि नीति, बिहार के श्रमिकों का पलायन : कारण और परिणाम, पर्यावरण विशेषांक, अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण पहलुओं तथा भूगोल में समुद्री संसाधन, प्रवाल विरंजन, समुद्र तट, नदी, झील, दलदल, द्वीप इत्यादि के साथ-साथ महंगाई की समस्या, सतत विकास में कृषि, भारत में प्रजातंत्र आज और कल इत्यादि महत्वपूर्ण पहलुओं पर आलेख प्रकाशित करें।

विनोद कुमार यादव
व्याख्याता, बिहार

संपादकीय

जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरण से जुड़ा विषय नहीं है। कोपेनहेगन में जैसा साफ़ हो चुका है, कुछ देशों के लिए इसका अर्थ है अपनी भारी खपत वाली जीवनशैली को बनाए रखते हुए इस जीवनशैली के उत्पादों को कालीन के नीचे छिपाने के रास्ते ढूंढ़ना। दूसरों के लिए इसका अर्थ विकास के अपने अधिकारों की रक्षा करना, तो कुछ अन्य के लिए यह उनके अस्तित्व से जुड़ा प्रश्न है। वैश्विक आम सहमति के लिए यह कोई अच्छी पृष्ठभूमि नहीं कही जा सकती। परंतु भारत और अन्य बेसिक देशों ने मौजूदा परिस्थितियों में जो कर सकते थे, वह कर दिखाया है। जलवायु परिवर्तन संबंधी वार्ताओं में शक्तिशाली समूह के रूप में उभरते हुए इन चार देशों के समन्वित प्रयासों से यह सुनिश्चित हो सका है कि यूएनएफसीसीसी के अंतर्गत वार्ताएं, बाली में तैयार किए गए रास्तों पर चलती रहेंगी। इनमें से एक रास्ता दीर्घकालीन सहकारी कार्रवाई की ओर ले जाता है तो दूसरा क्योटो समझौते के तहत संलग्नक एक के देशों की दूसरी प्रतिबद्धता अवधि की ओर। 2010-12 की अवधि के लिए 30 अरब डॉलर का कोपेनहेगन हरित जलवायु कोष (कोपेनहेगन ग्रीन क्लाइमेट फंड) पिछड़े और संवेदनशील देशों में अनुकूलन और शमन प्रयासों के लिए उपयोगी साबित होगा।

भारत को बड़ी सावधानीपूर्वक समझ-बूझ कर अपने क़दम उठाने होंगे। शताब्दी के अंत तक तापमान में 2.5 से 5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि की संभावना के साथ-साथ वर्षा प्रणाली के बेकाबू हो जाने तथा समुद्र के स्तर में वृद्धि की संभावना से खाद्यान्न सुरक्षा, जल सुरक्षा, आजीविका और स्वास्थ्य संबंधी भारी समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। इसके साथ ही, ग़रीबी उन्मूलन की पूर्व शर्त के रूप में उच्च विकास दर को बनाए रखने की आवश्यकता और प्रतिव्यक्ति ऊर्जा खपत में वृद्धि की आवश्यकता के बीच संतुलन बनाए रखना होगा ताकि ठीक-ठाक ढंग से जीवनयापन के लिए न्यूनतम स्वीकार्य स्तर की सुविधाएं प्रदान की जा सकें।

यह सही है कि भारत अपने विविध और प्राय: असंगत चिंताओं के बीच संतुलन बिठाने के अपने प्रयासों के लिए अपने अंदर और बाहर दोनों ओर देख रहा है। इसकी झलक हमें जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के शमन और अनुकूलन के व्यापक घरेलू एजेंडे में दिखाई देती है। भारत ने 2020 तक उत्सर्जन में 20-25 प्रतिशत की कटौती (2005 के स्तर से) का लक्ष्य रखा है। यह बात अंतरराष्ट्रीय मंच पर हमारी स्वत: सक्रिय जलवायु वार्ताओं में भी परिलक्षित होती है, जहां हम सामान्य किंतु विभेदीकृत उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर लगातार अड़े रहे हैं। हम उत्सर्जन पर तुरंत कोई औपचारिक प्रतिबंध की अड़चन के बग़ैर आर्थिक विकास के विकासशील देशों के अधिकार के लिए संघर्ष करने के साथ-साथ, विकसित देशों से उत्सर्जन में कटौती के अपने दायित्व को निभाने का लगातार आग्रह करते रहे हैं। संपोषणीय विकास के रास्ते पर विकासशील देशों को आगे बढ़ाने में विकसित देशों के सहयोग की आवश्यकता पर भी भारत ज़ोर देता रहा है। आज की इस नाज़ुक स्थिति में हमारे पांव मज़बूती से जमे हुए हैं, परंतु अभी लंबा रास्ता तय करना है। घरेलू और बाहरी, दोनों ही मोर्चों पर अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

योजना के इस अंक में शामिल लेखों में इस बात की विस्तृत विवेचना की गई है कि जलवायु परिवर्तन का भारत के लिए क्या अर्थ और महत्व है और इस परिघटना से जो समस्याएं पैदा होने वाली हैं उनसे निपटने के लिए हमने अब तक क्या कदम उठाए हैं। जिन क्षेत्रों पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, उनके बारे में भी इस अंक में चर्चा की गई है। ❑

डिग्री/डिप्लोमा अथवा इंस्टीट्यूट
की मान्यता संबंधित जानकारी
के लिए संपर्क करें
लॉग ऑन करें :-
• मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
(www.education.nic.in)
• विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
(www.ugc.ac.in)
• अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्
(www.aicte-india.org)
• राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्
(www.ncteindia.org)
• भारतीय विश्वविद्यालय संघ
Council (NAAC) (www.naacindia.org)
• भारतीय चिकित्सा परिषद्
(www.mciindia.org)
• दूरस्थ शिक्षा परिषद्
(www.ignou.ac.in)
भविष्य उज्ज्वल होगा
जब चुनाव सही होगा
प्रवेश लेने से पहले
संबंधित शिक्षा संस्थान
के बारे में पूरी
जानकारी अवश्य लें।
उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय

YH-4/10/3

कोपेनहेगन के आगे वैश्विक तपन

● नम्रता काला
अलार्क सक्सेना

वैश्विक तपन यानी जलवायु परिवर्तन से संबंधित हालिया संधि, जिसे कोपेनहेगन समझौता भी कहा जाता है, पर 18 दिसंबर, 2009 को कोपेनहेगन में हस्ताक्षर किए गए थे। सम्मेलन के अंतिम दिनों में 193 देशों के प्रतिनिधिमंडलों और अनेक ग़ैर-सरकारी संगठनों ने भाग लेकर, इसे हाल के समय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पर्यावरण सम्मेलन बना दिया। पक्षों के इस 15वें सम्मेलन (सीओसी) में 100 से अधिक राष्ट्राध्यक्षों और शासनाध्यक्षों ने भाग लिया। सम्मेलन के उथल-पुथल और भ्रांतिपूर्ण माहौल के बीच ब्राज़ील, दक्षिण अफ्रीका, भारत और चीन (बेसिक देश) ने यूएनएफसीसीसी प्रक्रिया से परे, अमरीका के साथ समझौते पर हस्ताक्षर किए। मेज़बान देश द्वारा वार्ता पर आधारित अलग से प्रारूप लाए जाने की आशाओं के बीच यह समझौता अन्य सहभागी देशों के लिए एक झटके के तौर पर सामने आया। कोपेनहेगन समझौता (सीए) जलवायु परिवर्तन से प्रभावित देशों के लिए कई मामलों में झूठी सहानुभूति जैसा साबित हुआ। अधिकांश निर्धन देश समझौते के बारे में राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव और उसकी प्रक्रिया से भ्रमित होकर रह गए। विश्व के सभ्य समाज में कोपेनहेगन के उपरांत जलवायु परिवर्तन संबंधी वार्ताओं और विश्व के प्रमुख उत्सर्जक देशों द्वारा उठाए गए क़दमों को लेकर चिंताएं बढ़ती जा रही हैं। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य है कि भावी संपोषणीय समृद्धि के लिए सुविचारित नियोजन, उद्योग जगत की भागीदारी और समाज के सदस्यों के रूप में युवाओं की सहभागिता से किस प्रकार भारत में जलवायु परिवर्तन के मुद्दों के बारे में मौजूदा संवेग को जारी रखा जा सकता है।

कोपेनहेगन समझौते को प्रभावहीन बनाने (महत्वाकांक्षी शमन लक्ष्यों में कटौती) और वैधानिक रूप से अबाध्यकारी बनाने (विश्व के सभ्य समाज की दृष्टि में अप्रभावी), साथ में वैश्विक आर्थिक मंदी से केवल यही संकेत मिलता है कि प्रमुख ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जक देशों पर उत्सर्जन में तेज़ी से कटौती करने के लिए अपेक्षित दबाव का अभाव रहा है। कोपेनहेगन समझौते के प्रारूप के लिए उत्तरदायी बेसिक नेतृत्व के कुछ सदस्यों, अर्थात भारत और चीन ने दृढ़तापूर्वक और कुछ हद तक बड़ी समझदारी से विश्व के सर्वाधिक उत्सर्जक देशों द्वारा शमनात्मक उपायों को सख़्ती से लागू करने की इच्छा के अभाव का उदाहरण देते हुए उत्सर्जन में पूर्ण कटौती करने से इंकार कर दिया। इसके अतिरिक्त, इन देशों ने यह रुख अख़्तियार किया है कि कोपेनहेगन समझौते को केवल भावी वार्ताओं के दिग्दर्शक दस्तावेज़ के रूप में ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए और इसे वैधानिक मान्यता तभी मिलनी चाहिए जब अन्य 180 देश भी इस पर हस्ताक्षर कर दें। इस राजनीतिक और कूटनीतिक सौदेबाज़ी का नतीज़ा बिल्कुल स्पष्ट है– ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती की वैश्विक प्रतिबद्धता को और कम करना। यह सीधे-सीधे मालदीव, नेपाल, बांग्लादेश और भारत जैसे जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील ज्यादातर देशों की स्थिति में और गिरावट आने की ओर संकेत करता है। कोपेनहेगन समझौते से जो अविश्वास पैदा हुआ है, उससे छोटे-छोटे द्वीपीय देशों, चारों ओर से ताक़तवर सीमाओं से घिरे देशों, अल्प विकसित और विकासशील देशों को बहुपक्षीय वार्ताओं से अपना ध्यान हटाकर द्विपक्षीय समझौते की ओर करने के लिए विवश कर दिया है। परंतु, विकसित देशों द्वारा वर्ष 2010-2012 के बीच 30 अरब डॉलर की अनुकूलन सहायता के बारे में की गई संयुक्त घोषणा को भावी वार्ताओं की दिशा में एक सकारात्मक संकेत माना जा सकता है। यह समझौता प्रभावित देशों की बाहरी सहायता प्राप्त करने की नीति को बदलकर अनुकूलन केंद्रित आंतरिक रणनीति अपनाने को विवश कर देगा। क्योंकि जलवायु परिवर्तन से प्रभावित अधिकतर देश उत्सर्जन के दोषी नहीं हैं।

अनुमानित प्रभाव, ख़तरा और कार्रवाई की गुंजाइश

जलवायु परिवर्तन के बारे में भारत का जो चिंताजनक परिदृश्य तैयार किया गया है, उसमें धरती के तापमान में 2.5-5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि और वार्षिक वर्षा में 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी की संभावना व्यक्त की गई है। इस प्रकार सूखे वाले क्षेत्रों में और सूखा तथा वर्षा वाले क्षेत्रों में और अधिक वृष्टि होगी। इन परिवर्तनों से अनाज, सब्ज़ियों और फलों का उत्पादन प्रभावित होगा और कृषि राजस्व में 9-25 प्रतिशत की कमी हो सकती है। वानिकी क्षेत्र में वनों के व्यापक क्षरण की संभावना है। वर्ष 2085 तक वनों के प्रकार में 68-77 प्रतिशत नकारात्मक बदलाव के कारण जैव

विविधता में भी भारी कमी होने की आशंका जताई गई है। स्वास्थ्य क्षेत्र में भी मौसम में बदलाव के कारण रोगवाही कीटों से होने वाली मलेरिया जैसी बीमारियों के उन क्षेत्रों में फैलने की आशंका है, जो अब तक उनसे अछूते रहे हैं। अतिसार जैसी बीमारियों और हैजे के प्रकोप के कारण मृत्युदर में वृद्धि के बारे में भी भविष्यवाणियां की गई हैं, जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत ने यूएनएफसीसीसी को 2004 में जो पहला अभिवेदन भेजा था, उसमें इस तथ्य को बताया गया कि सामाजिक-आर्थिक दबावों के कारण पहले से ही तनाव झेल रहे वन, कृषि और मत्स्यपालन जैसे क्षेत्रों पर जलवायु परिवर्तन के कारण और भी गंभीर प्रभाव पड़ने की आशंका है। इन परिवर्तनों से देश की सभी सामाजिक और पारिस्थितिकीय प्रणालियां प्रभावित होंगी।

स्पष्ट है कि भारत की स्थिति अन्य देशों से अलग है। यहां जनसंख्या का काफी बड़ा प्रतिशत ऐसा है जो जलवायु परिवर्तन के प्रति अति संवेदनशील है, तो वहीं इसे ग्रीनहाउस गैसों के प्रमुख उत्सर्जक देशों में (कुल निकासी के अर्थ में) गिना जाता है। अब चूंकि अनेक देश जलवायु परिवर्तन और विकास के प्रति प्रतिक्रियावधि रणनीति के स्थान पर स्वत: सक्रिय (प्रोएक्टिव) रणनीति अपनाने की ओर अग्रसर हो रहे हैं, यह भारत के हित में होगा कि वह आंतरिक मुद्दों पर ध्यान केंद्रित कर उन विकासशील देशों के लिए एक मैत्रीपूर्ण छवि प्रस्तुत करे, जो हमेशा से विकास-आदर्शों और कूटनीति के लिए भारत की ओर देखते आए हैं। चूंकि उत्सर्जन में पूर्ण रूप से कटौती करना निकट भविष्य में कतई संभव नहीं है अत: जलवायु परिवर्तन को विकसित देशों द्वारा विकास के मार्ग में थोपी गई असुविधाजनक बाधाओं के स्थान पर भारत को उसे विकास की वैश्विक चुनौती के रूप में लेना चाहिए और अदल-बदल कर प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल, कम कार्बन वाले अधोसंरचना निर्णयों और ऐसी ऊर्जा नीतियों को अपनाने के लिए संभावित अंतरराष्ट्रीय भागीदारी की ओर ध्यान देना चाहिए, जिससे ऊर्जा सुरक्षा में वृद्धि हो सके और नवाचार के अवसरों में इज़ाफ़ा हो।

इन प्राथमिकताओं की स्वीकार्यता की झलक कुछ सीमा तक जून 2008 में घोषित राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना में दिखाई देती है जिसमें शमन और अनुकूलन से संबंधित 8 मिशनों की स्थापना की बात कही गई थी। यह स्वीकार्यता, उसके बाद शुरू हुई ऊर्जा-प्रयासों में भी दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, नवंबर 2009 में, सरकार ने सौर ऊर्जा का उत्पादन 2022 तक 6 मेगावाट से बढ़ाकर 20 गीगावाट करने के लिए तीन चरणों वाले सौर ऊर्जा मिशन को मंजूरी दी। सौर ऊर्जा के उत्पादन में 3,000 गुना वृद्धि के इरादे से यह मिशन बनाया गया है। परियोजना के पहले चरण पर 90 करोड़ डॉलर का ख़र्च होगा, जबकि कुल लागत 12-20 अरब डॉलर के बीच रहने की आशा है। इसके अतिरिक्त, जनवरी 2010 में यूएनएफसीसीसी को स्वैच्छिक रूप से की गई घोषणा के अनुसार उत्सर्जन तीव्रता में 2020 तक 2005 के स्तर से 20-25 प्रतिशत की कटौती की जाएगी। साथ ही, मौजूदा बजट में हरित प्रौद्योगिकी का उपयोग करने वालों को करों में रियायत देने की जो घोषणा की गई है, उससे शमन और अनुकूलन दोनों पहलुओं से, जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने की दिशा में अच्छी शुरुआत हुई है। परंतु राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना (एनएपीसीसीसी) पर पूर्ण रूप से अमल करने और जलवायु परिवर्तन के आयोगों को विकास की व्यापक धारा की ओर मोड़ने के लिए तकनीकी विशेषज्ञता और अप्रत्याशित स्तर पर विस्तारित संस्थागत क्षमता के साथ-साथ सभ्य समाज, सरकार और उद्योग जगत के बीच प्रभावी समन्वय की आवश्यकता होगी।

विकास पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव डालने वाली स्थिति के अनुसार अपने आपको ढालने से अन्य अनेक लाभ हो सकते हैं, जिन पर इन नीतिगत निर्णयों की उच्च लागत पर विचार करते समय सोचना महत्वपूर्ण हो सकता है। उदाहरण के लिए, जीवाश्म ईंधन के स्थान पर स्वच्छतर प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल से मानवीय स्वास्थ्य को होने वाला लाभ। इस प्रकार, यह साबित हो जाने के बाद कि भारत एक सुदृढ़ वार्ताकार है और यूएनएफसीसीसी प्रक्रिया का एक प्रतिबद्ध पक्ष है, उसे अब अपने विकास के लिए ऐसी राष्ट्रीय नीतियां अपनाने की ओर कदम बढ़ाना चाहिए जिनसे जलवायु पर कोई ख़ास असर न पड़ता हो। इनके बारे में इस आलेख में आगे विस्तार से जानकारी दी गई है। जलवायु परिवर्तन के प्रति भारत की संवेदनशीलता को न्यूनतम स्तर पर लाने के साथ-साथ यूएनएफसीसीसी प्रक्रिया में अपनी प्रमुख स्थिति की सुदृढ़ता के लिए यह अनिवार्य है।

सर्वाधिक कटौती की क्षमता वाले शमन प्रयास और उनके लाभ

राष्ट्रीय शमन नीति का जहां तक सवाल है, भारत को उन क्षेत्रों में कार्रवाई करनी चाहिए जिनसे उत्सर्जन में कटौती की अधिक संभावना हो, जैसेकि ऊर्जा कार्यकुशलता यानी ऊर्जा की ख़पत में किफायत। इन प्रयासों को फलीभूत करने के लिए अंतरराष्ट्रीय भागीदारियों से शुरुआती लागत की क्षतिपूर्ति आंशिक रूप से की जा सकती है। इससे भविष्य में अधोसंरचना में बदलाव की दीर्घकालिक लागत की भारी संभावना से भी बचा जा सकता है। परिवहन और भवन निर्माण जैसे अधिक उत्सर्जन और उच्च विकास के क्षेत्रों में हस्तक्षेप से विशेष प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरणार्थ, यदि यह सुनिश्चित किया जा सके कि नये भवनों में निश्चित पर्यावरणीय संहिताओं का पालन किया जा रहा है, तो पर्यावरण-हितैषी अधोसंरचना की ओर क़दम बढ़ाने का यह अपेक्षाकृत क़िफायती परंतु व्यापक और कुशल तरीक़ा हो सकता है। इसी प्रकार, ऊर्जा की ख़पत में क़िफायत से उत्सर्जन कटौती की संभावना सबसे अधिक बढ़ जाती है। क़िफायती ख़पत वाले ऊर्जा उपकरणों की स्थापना की सर्वसुलभ वित्तीय रणनीति से भारत के मझोले और लघु उद्योगों को काफी लाभ पहुंच सकता है। ये वे क्षेत्र हैं जिनको लगाने से साथ में अन्य अनेक लाभ भी होते हैं, जैसे यातायात की भीड़ से बचाव की लागत में कमी, स्वच्छ वायु से मानव स्वास्थ्य को होने वाले फायदे और संसाधन का किफायती उपयोग।

इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की भागीदारियों से यह सुनिश्चित हो सकेगा कि निजी क्षेत्र वैश्विक स्तर पर अपनी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बनाए रख सकेगा। भारत का निजी क्षेत्र नवीकरणीय प्रौद्योगिकी प्रयासों के मामले में काफी सक्रिय है। भारत पवन ऊर्जा के मामले में विश्व का चौथा सबसे बड़ा बाज़ार है और दूसरा सबसे तेज़ी से बढ़ने वाला (पवन ऊर्जा) बाज़ार। नवीकरणीय ऊर्जा परियोजनाओं का हिस्सा भारत के स्वच्छ विकास तंत्र (सीडीएम) में सबसे बड़ा है (815 में से 536 परियोजनाएं), जिनको यदि उचित रूप से बढ़ाया जाए तो स्वच्छ ऊर्जा के लिए वे निवेश का सुदृढ़ स्रोत बन सकती हैं। स्पष्ट और निरंतर लक्ष्य दिए जाने से इन क्षेत्रों में दीर्घकालिक

निवेश करना आसान होगा, जोकि बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश स्वच्छ प्रौद्योगिकियों की लागत की भरपाई में पारंपरिक प्रौद्योगिकियों की तुलना में अधिक समय लगता है।

राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों में अनुकूलन का समेकन

वर्तमान में, भारत के अधिकांश विकास कार्यक्रमों और योजनाओं की क्रियान्वयन रणनीतियों में जलवायु की अनिश्चितताओं का समेकन नहीं किया गया है और इसलिए, जलवायु परिवर्तन की अनिश्चितताओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। जलवायु से अप्रभावित विकास के बारे में प्राथमिक चिंता का विषय राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर सामाजिक-आर्थिक विकास परियोजनाओं और रणनीतियों पर पुनर्विचार की क्षमता और किसी स्तर पर जलवायु परिवर्तन अनुकूलन का समेकन है। संकर बीज विविधता परियोजनाएं, माइक्रो/मिनी पनबिजली परियोजनाएं और स्वास्थ्य परियोजनाएं इन परिवर्तनों से सबसे आसानी से प्रभावित हो जाती हैं। इनकी रूपरेखा इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि जलवायु परिवर्तन का उन पर असर न पड़े।

मुख्य विकास नीति में अनुकूलन के समेलन और 'जलवायु-सह' कार्यक्रमों के सुविचारित प्रयासों से क्रियान्वयन की कुल लागत में कटौती की जा सकेगी और इससे सफलता की संभावना बढ़ जाएगी। इन उपायों को शामिल करने का एक अच्छा अवसर हमें महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी कार्यक्रम (मनरेगा) में प्राप्त हो सकता है, क्योंकि स्थानीय संस्थाएं इससे सक्रिय रूप से जुड़ी हुई हैं। स्थानीय संस्थाओं को इन कार्यक्रमों से जोड़ना बहुत निर्णायक साबित हो सकता है क्योंकि इससे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि मैदानी स्तर पर जो उपाय किए जा रहे हैं वे स्थानीय परिस्थितियों और पद्धतियों के सर्वथा अनुकूल हैं। उदाहरण के मलिए नरेगा की लगभग 10 लाख परियोजनाओं का क़रीब 60 प्रतिशत जल निकायों के निर्माण, सुधार और पुनर्भराव से संबंधित है। इस प्रकार के कार्यक्रमों के क्षेत्र में विस्तार और उनको ग़रीबी उन्मूलन और रोज़गार सृजन नीतियों से जोड़ने से न केवल विकास के लक्ष्य पूरे हो सकेंगे बल्कि स्थानीय स्तर पर अनुकूलन क्षमता में भी वृद्धि होगी। यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि प्रमुख निर्णय हालांकि राष्ट्रीय स्तर पर लिए जाते हैं और जलवायु-सह नीति संबंधी निर्णय भी इसका अपवाद नहीं होगा, अनुकूलन की कार्यवाही मुख्यत: स्थानीय परिस्थितियों और जानकारी के आधार पर ही तय की जानी चाहिए। चूंकि स्थानीय स्तर के अनुकूलन में अधिकांश भागीदारी स्थानीय लोगों की ही होगी, यह महत्वपूर्ण होगा कि इस प्रकार की नीतियों को विशेष रूप से इस तरह तैयार किया जाए कि उनमें स्थानीय हित साधकों को भी शामिल किया जा सके। जलवायु के अनुकूल विकास कार्यक्रमों से एक अन्य लाभ यह होगा कि यूएनएफसीसीसी के माध्यम से प्राप्त होने वाली अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय अनुकूलन वित्तीय सहायता को अधिक अनुकूलन लाभ देने वाले कार्यक्रमों की ओर आसानी से मोड़ा जा सकेगा।

संपोषणीय विकास हेतु जनमत निर्माण

पीढ़ियों में समानता का एकीकरण, निर्णय प्रक्रिया में युवा सहभागिता को संस्थागत स्वरूप देना, एनएपीसीसी में जिन मिशनों का शुरुआत की गई है उनमें यद्यपि आगे बढ़ने का बढ़िया माद्दा है और उनकी निर्णय प्रक्रिया में नगर समाज को शामिल किया जा सकता है, परंतु इस पूरी प्रक्रिया में युवाओं के ठोस प्रतिनिधित्व की आवश्यकता है। अधिकांश पूर्वानुमानों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वर्तमान नीतियों और कार्यों के परिणाम भावी पीढ़ी के लिए अतार्किक और असंगत हो सकते हैं और इसलिए वर्तमान निर्णय प्रक्रिया में मुख्य चालक बीज के रूप में पीढ़ीगत समानता के सिद्धांत को स्वीकार करने की आवश्यकता है। जलवायु संबंधी चर्चाओं और कार्यों में भारत के युवा काफी सक्रिय रहे हैं। निर्णय की इस प्रक्रिया में जब तक युवाओं का मज़बूत प्रतिनिधित्व नहीं होगा, जलवायु परिवर्तन के वर्तमान संवेग को स्थायी रूप नहीं दिया जा सकेगा।

अधिकार बनाम कर्तव्य और जनभागीदारी

इस आलेख के अधिकांश भाग में जलवायु परिवर्तन प्रक्रिया से संबंधित सरकारी कार्रवाई की आवश्यकता, नागर समाज और स्थानीय हित साधकों के अधिकारों के बारे में चर्चा की गई है। हाल के एक अंतरराष्ट्रीय सर्वेक्षण (2009) में यह दर्शाया गया है कि चीन, ब्राज़ील, ब्रिटेन और अमरीका जैसी प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा इस बात में यकीन करता है कि जलवायु परिवर्तन एक आसन्न समस्या है।। इसका सकारात्मक पहलू यह है कि समस्या समाधान योग्य है। व्यक्तिगत व्यवहार में बदलाव लाने के लिए लोगों को सरकार की ओर से भारी प्रोत्साहनों की अपेक्षा है। सर्वेक्षण में स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि जनसंख्या (लोग) सामूहिक, व्यक्तिगत कार्यवाहियों की संभावित क्षमता से अवगत है और सरकार एवं नागर समाज के बीच मिलकर काम करने के लिए अवसर की एक खिड़की खुली हुई है ताकि स्थानीय और राष्ट्रीय स्तरों पर पर्यावरणीय प्रभाव में कमी लाने के लिए व्यक्तिगत कार्यों को कर्तव्य का रूप दिया जा सके। सरकार जहां एक ओर, आबादी के विभिन्न वर्गों की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु विद्युत उत्पादन और आपूर्ति के अपने तौर-तरीक़ों पर विचार कर रही है, वहीं उसे उद्योग जगत पर यह दबाव बनाए रखने की आवश्यकता है कि वह अपने पर्यावरणीय पदचिह्नों में कटौती की ओर ध्यान दे। सामूहिक जनकार्रवाई से इसे और आगे बढ़ाया जा सकता है।

निष्कर्ष

यहां हम यह मान भी लें कि कोपेनहेगन में भारतीय कूटनीति विकास के अधिकार को संरक्षित कर अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने में कामयाब रही, परंतु हम विकास के पुराने तौर-तरीक़ों को बनाए रखते हुए संभावित ख़तरों की अनदेखी नहीं कर सकते। जलवायु परिवर्तन विश्व समुदाय के समक्ष मौजूद एक आसन्न चुनौती है। इसका सामना करने के लिए वैश्विक, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर मिले-जुले प्रयासों की आवश्यकता है। इसके साथ ही, अधिक संपोषणीय विकास के रास्ते पर चलने से अनेक आर्थिक अवसर भी हाथ में आते हैं, जैसे अधिक किफायती संसाधन उपयोग तथा और अधिक पर्यावरण अनुकूल उद्योग। जलवायु परिवर्तन के विषय में भारत की स्थिति सबसे जुदा है और इसलिए हमें आर्थिक विकास के लक्ष्यों को इन अवसरों के साथ-साथ जलवायु संबंधी ख़तरों के प्रति प्रासंगिक बनाना होगा। हाल की अनेक नीतियों में संपोषणीयता का पुट है। नागर समाज और निजी क्षेत्र के साथ तालमेल बिठाते हुए इसे बनाए रखने से यह सुनिश्चित हो सकेगा कि जलवायु पर कार्रवाई की गति बनी हुई है और साथ ही मुख्यधारा के विकास संबंधी लक्ष्यों से इसका एकीकरण हो चुका है। ❑

(लेखकद्वय अमरीका स्थित येल स्कूल ऑफ फॉरेस्ट्री एंड एनवाएरनमेंटल स्टडीज़ में शोधरत हैं।
ई-मेल : namrata.kala@yale.edu एवं alark.saxena@yale.edu)

क्या है कार्बन फुटप्रिंट?

कार्बन फुटप्रिंट का मतलब किसी एक संस्था, व्यक्ति या उत्पाद द्वारा किया जाने वाला कुल कार्बन उत्सर्जन होता है। दूसरे शब्दों में, इसका मतलब कार्बन डाई-ऑक्साइड या ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी होता है। कार्बन फुटप्रिंट का नाम इकोलॉजिकल फुटप्रिंट विमर्श से निकला है। यह इकोलॉजिकल फुटप्रिंट का ही एक अंश है। उससे अधिक यह जीवनचक्र आकलन (एलसीए) का हिस्सा है। किसी व्यक्ति, संस्था या वस्तु के कार्बन फुटप्रिंट का आकलन ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के आधार पर किया जा सकता है। संभवत: कार्बन फुटप्रिंट का सबसे बड़ा कारण इंसान की इच्छा ही होती है। इसके साथ घर में इस्तेमाल होने वाली बिजली की ज़रूरत भी इसका बड़ा कारण है। वैज्ञानिकों के अनुसार इंसान की क़रीब सभी आदतें, जिनमें खानपान से लेकर पहने जाने वाले कपड़े तक शामिल हैं, कार्बन फुटप्रिंट का कारण बनते हैं।

दूसरे शब्दों में हर काम के लिए ऊर्जा की ज़रूरत पड़ती है और इससे कार्बन डाइ-ऑक्साइड (सीओ2) गैस निकलती है, जो धरती को गर्म करने वाली सबसे अहम गैस है। हम दिन, महीने या साल में जितनी सीओ2 पैदा करते हैं, वह हमारा कार्बन फुटप्रिंट है। इसे कम से कम रख कर ही पृथ्वी को जलवायु परिवर्तन के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

ग्रीनहाउस गैसों में कमी लाने के कई तरीक़े हैं। सौर, पवन ऊर्जा के अधिक इस्तेमाल और पौधारोपण आदि से कार्बन उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है। कार्बन उत्सर्जन और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का वातावरण में निकास जीवाश्म ईंधन, कच्चे तेल और कोयले के जलने से होता है। क्योटो प्रोटोकॉल में कार्बन उत्सर्जन और ग्रीनहाउस गैसों पर मसौदा पेश किया गया।

अपने कार्बन फुटप्रिंट में कमी घर में बिजली इस्तेमाल में किफायत से, फ्लोरेसेंट बल्बों के इस्तेमाल से लाई जा सकती है। अपने बर्तनों को हाथ से धोकर, उन्हें खुले वातावरण में रखकर सुखाएं। ग्लास, धातुओं, प्लास्टिक और कागज़ को एकाधिक बार इस्तेमाल में लाएं। अपने रेफ्रिजरेटर की रफ़्तार धीमी रखें। घर की दीवारों पर हल्के रंग का पेंट भी इसमें मददगार होता है।

सालाना सीओ2 उत्सर्जन	(हजार मीट्रिक टन में)
चीन	6,103,493
अमरीका	5,752,289
यूरोप	3,914,359
रूस	1,564,669
भारत	1,510,351

कुल उत्सर्जन में विभिन्न देशों की (हिस्सेदारी)	(प्रतिशत में)
चीन	21.5
अमरीका	20.2
यूरोप	13.8
रूस	5.5
भारत	5.3

उत्सर्जन के कारण	(प्रतिशत में)
बिजली और हीटिंग	24.6
भू-उपयोग में परिवर्तन	18.2
खेती	13.5
परिवहन	13.5
उद्योग	10.4

छोटे क़दम, बड़ा असर

दुनिया ख़तरे में है। तरक़्क़ी की दौड़ में हमने प्रकृति के साथ ऐसा खिलवाड़ किया पृथ्वी के वातावरण में ज़हरीली गैसों का जमाव बेहिसाब बढ़ा है। इससे जलवायु असंतुलित हो गई है और धरती का तापमान बढ़ने लगा है। इससे मौसम का मिज़ाज भी बदल रहा है। आने वाले बरसों में सूखे और बाढ़ से तबाही की संभावना बढ़ी है। हम धरती को बचाने में अगर थोड़ी-सी भी मदद कर सकें तो, हमारी छोटी-छोटी कोशिशें मिलकर बड़ा फर्क़ ला सकती है। ये कोशिशें निम्न प्रकार से हो सकती हैं :

- जहां भी हो सके ऊर्जा बचाएं। यह बचत आपके फालतू के ख़र्च भी कम करेगी।
- सीएफएल बल्वों का इस्तेमाल करें। सीएफएल का इस्तेमाल करने से साल में क़रीब 70 किलो सीओ2 बचाया जा सकता है।
- नन्हें इंडिकेटर और स्टैंडबाय मोड पर अटके गैजेट्स भी कई किलो सीओ2 पैदा करते हैं।
- वॉशिंग मशीन तभी चलाएं जब उचित मात्रा में कपड़े हों।
- स्टार लेवल वाले उपकरण 15 प्रतिशत तक बिजली बचाते हैं।
- गाड़ी के टायरों में हवा सही रखकर 3 प्रतिशत ईंधन बचा सकते हैं।
- अधिक से अधिक वृक्ष लगाएं। एक अकेला वृक्ष अपनी ज़िंदगी में एक टन सीओ2 सोखता है।
- स्थानीय रूप से उपलब्ध खाद्य पदार्थों के इस्तेमाल से ऊर्जा की खपत आधी की जा सकती है।
- खाना बर्बाद न करें। इसे तैयार करने में बहुत ऊर्जा लगती है। फ्रोजन फूड की जगह ताज़ा खाना खाएं।
- डिब्बाबंद चीज़ों से बचें। आपकी किफायत दुनिया को बचा सकती है।
- अगर हो सके तो प्राकृतिक (अक्षय) ऊर्जा प्रयोग में लाएं। ❑

भारतीय पर्यावरण कानून और जलवायु परिवर्तन

● शिजू एम.वी.

भारत में पर्यावरण कानून काफी समृद्ध और विकसित है। भारतीय संविधान विश्व के उन गिने-चुने संविधानों में से एक है, जिनमें पर्यावरण संरक्षण के प्रावधान भी दिए गए हैं। 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के ज़रिये संविधान में जोड़ी गई धाराओं 48ए और 51ए(जी) के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण का दायित्व राज्य और उसके नागरिकों पर डाला गया है। परंतु भारतीय पर्यावरण कानून का विकास टुकड़ों में हुआ है और यह अन्य कुछ घटनाक्रमों के फलस्वरूप प्रवर्तित हुआ है। भारतीय पर्यावरण कानून के विकास के पीछे तीन घटनाओं की प्रमुख भूमिका रही है। स्टॉकहोम में 1972 में हुए संयुक्त राष्ट्र मानवीय पर्यावरण सम्मेलन ने पर्यावरण के क्षेत्र में अनेक कानूनों के निर्माण को दिशा प्रदान की। जल अधिनियम, वायु अधिनियम, वन संरक्षण अधिनियम और पर्यावरण से संबंधित प्रावधानों को संविधान में सम्मिलित करना, इसके कुछ ज्वलंत उदाहरण हैं। भोपाल में 1984 में घटित गैस त्रासदी से भारतीय वैधानिक प्रणाली की अनेक खामियां सामने आईं। इस त्रासदी से पीड़ित लोग अमरीका और भारत की अदालतों में जो लड़ाइयां लड़ रहे हैं, वे इसी बात को साबित करती हैं। त्रासदी के फलस्वरूप अनेक कानून बनाए गए, जिनमें 1988 का पर्यावरण(संरक्षण) अधिनियम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

रियो सम्मेलन, जो वर्ष 1993 में हुआ, उससे भी भारत के पर्यावरण परिदृश्य में कुछ वैधानिक हरक़त होती दिखाई दी। जैव विविधता अधिनियम, 2002 सम्मेलन में अपनाए गए जैव विविधता अभिसमय (कन्वेंशन) को क्रियान्वित करने के लिए बनाया गया था।

विभिन्न कानूनों और संवैधानिक प्रावधानों को गिनानेभर से भारतीय पर्यावरण कानून के सार को समझा नहीं जा सकता। भारत की न्यायपालिका ने भी देश में पर्यावरणीय विधिशास्त्र को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जनहित याचिकाओं (पीआईएल) ने सृजनात्मक और कल्पनाशील न्यायाधीशों के हाथों में पड़कर पर्यावरण के क्षेत्र में न्याय प्रदान करने में प्रभावी साधन के तौर पर काम किया है। पर्यावरण के संरक्षण के लिए न्यायपालिका ने अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। प्रदूषक को भुगतान करने का सिद्धांत, सावधानी सिद्धांत, पूर्ण दायित्व का सिद्धांत, संपोषणीय विकास की अवधारणा और पीढ़ियों के बीच समानता का सिद्धांत जैसे नये सिद्धांतों और अवधारणाओं का उपयोग कर न्यायालयों ने आलस्यमयी कार्यपालिका को झकझोर कर अनेक पर्यावरणीय संकटों में हस्तक्षेप किया। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायपालिका पर्यावरण के क्षेत्र में ही सबसे सक्रिय भूमिका निभा रही है। नदियों की सफ़ाई, स्मारकों का पुनरुद्धार, ख़तरनाक पदार्थों से होने वाले प्रदूषण की सफ़ाई, नदियों की धाराओं में आए परिवर्तन का अपने मूल स्वरूप में बहाली, वनों का संरक्षण और शहरों में वाहनों से प्रदूषण की समस्या के निराकरण का आदेश देकर न्यायालयों ने सुपर प्रशासक से लेकर नीति-निर्माता तक की अनेक भूमिकाएं निभाई हैं।

जलवायु परिवर्तन से संवैधानिक स्तर पर अनेक चुनौतियां मिल रही हैं। वर्तमान में भारत में जलवायु परिवर्तन पर कोई पृथक कानून नहीं है। जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए विकास गतिविधियों पर रोक लगाने वाले कानून का निर्माण इस समय कोई ज़रूरी भी नहीं है। संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन आधारभूत संधि में निहित और अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण कानून में सम्मिलित समानता और सामान्य किंतु विभेदीकृत उत्तरदायित्व का सिद्धांत भारत जैसे विकासशील देश की अपने अरबों दरिद्र नागरिकों के विकास के अधिकारों को सुनिश्चित करने की आवश्यकता को स्वीकार करता है। प्रतिव्यक्ति आधार का तर्क़ भी भारत के पक्ष में ही है, क्योंकि वर्ष 1994-2007 की अवधि में अमरीका के 128.7 टन की तुलना में भारत में प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन मात्र 5.7 टन ही था। परंतु इन सब बातों से इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत ग्रीनहाउस गैसों के पांच प्रमुख उत्सर्जक देशों में से एक है। यह तथ्य कि निर्धन और कमज़ोर वर्ग, जिनकी संख्या के दम पर ही प्रतिव्यक्ति अल्प उत्सर्जन का तर्क़ आधारित है, जलवायु परिवर्तन में कोई उल्लेखनीय भूमिका नहीं निभाते, बल्कि इसके नकारात्मक प्रभावों के प्रति वे सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं, राष्ट्रीय स्तर पर समानता के गंभीर मुद्दों को जन्म देता है। व्यक्ति के सम्मान को सुनिश्चित करने का प्रयास करने वाली वैधानिक प्रणाली को इस समस्या से गंभीर रूप से निपटना होगा।

ऐसे कुछ वैधानिक, नियामक और नीतिगत आधारभूत सिद्धांत हैं जिनका उपयोग जलवायु परिवर्तन के शमन के लिए किया जा सकता है। ऊर्जा के क़िफायती इस्तेमाल को बढ़ावा देने के लिए निर्मित ऊर्जा संरक्षण अधिनियम, 2001 और नवीकरण (अक्षय) ऊर्जा के एक निश्चित प्रतिशत की अनिवार्य ख़रीदी का शासनादेश देने वाली राष्ट्रीय आयात शुल्क नीति, 2006 शमन प्रयासों के महत्वपूर्ण साधन हैं। राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्रवाई योजना एक महत्वपूर्ण नीति विषयक दस्तावेज़ है जो भारत में शमन और अनुकूलन प्रयासों को दिशा प्रदान करता है।

इनके अतिरिक्त भारतीय पर्यावरणीय

विधिशास्त्र की अनेक अवधारणाओं का उपयोग जलवायु परिवर्तनजनित चिंताओं के निराकरण के लिए किया जा सकता है। सावधानी का सिद्धांत/दृष्टिकोण वह आधारशिला है जिस पर यूएनएफसीसी और क्योटो समझौता टिका हुआ है। सावधानी का सिद्धांत कहता है कि जहां गंभीर और अपरिवर्त्य क्षति का ख़तरा हो वैज्ञानिक निश्चितता के अभाव को पर्यावरणीय विकृति को रोकने के उपायों को टालने के कारण के रूप में नहीं किया जाना चाहिए। भारतीय न्यायालयों के अनेक निर्णयों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सावधानी का सिद्धांत भारतीय कानून का ही एक हिस्सा है। भारत के विशिष्ट संदर्भ में, सावधानी का सिद्धांत सरकारों पर अतिरिक्त उत्तरदायित्व डालता है। अमल में लाए जाने वाले पर्यावरणीय उपायों में पर्यावरणीय क्षति के कारणों का पूर्वानुमान लगाना, उनसे बचाव करना और उन पर हमला करना आवश्यक रूप से शामिल होना चाहिए। सावधानी का सिद्धांत सबूत का भार किसी और पर डाल देता है। इस सिद्धांत के तहत सबूत की जिम्मेदारी उद्योगपति, डेवलपर (भूखंड का विकास और निर्माण करने वाला व्यक्ति या कंपनी) अथवा संबंधित संस्था की होती है ताकि यह दिख सके कि उसके कार्य पर्यावरण के अनुकूल हैं (वेल्लूर सिटीज़ंस वेलफ़ेयर फ़ोरम बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, एआईआर, 1996 एससी 2715)। प्रदूषक के भुगतान करने का सिद्धांत एक और महत्वपूर्ण नियम है जो भारत में विकसित हो रहे जलवायु परिवर्तन विधिशास्त्र में केंद्रीय भूमिका निभा सकता है। प्रदूषक को भुगतान (हर्ज़ाना) करने वाले सिद्धांत का अर्थ है कि ज़ोखिमभरे और ख़तरनाक गतिविधियों को अंज़ाम देने वाले व्यक्ति को उस व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करनी होगी, जिसको उसके कार्यों से नुक़सान हुआ हो, भले ही उस कार्य में उचित सावधानी बरती गई हो। इंडियन कौंसिल फॉर एनवायरो-लीगल एक्शन बनाम यूनियम ऑफ इंडिया, एआईआर 1996 एससी 1446)। यह एक तथ्य है कि जीवन का अधिकार देने वाली भारतीय संविधान की धारा 21 का इस्तेमाल इन सिद्धांतों को वैधानिक आधार देने के लिए किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि कोई भी कानून अथवा प्रशासकीय (अधिशासी) उपाय की चालाकी उसे मात नहीं दे सकती।

वैश्विक स्तर पर जलवायु पविर्तन संबंधी विधिशास्त्र में हाल के दिनों में जो प्रगति हुई है, उससे राष्ट्रीय स्तर पर चुनौतियां और बढ़ गई हैं। हाल के वर्षों में ऐसा साहित्य और अनेक ऐसे अधिकृत बयान सामने आए हैं जिनमें मानवाधिकारों के नज़रिये से जलवायु परिवर्तन का विश्लेषण किया गया है। यह एक स्वागतयोग्य परिवर्तन है जिसमें फोक़स अब हटकर राज्यों से व्यक्तियों पर केंद्रित हो गया है। इस दृष्टिकोण से जलवायु परिवर्तन कर्ताओं को राज्य सरकारों के बीच व्यापार का मंच नहीं बनाया जा सकता और जलवायु परिवर्तन अब केवल विज्ञान और राजनीति का विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह अनिवार्य रूप से एक ऐसी मानवीय प्रक्रिया है जो मानवीयकरण और प्रभाव को प्रदर्शित कर सकती है।

अमरीका के मानवाधिकार आयोग में वर्ष 2005 में अमरीका और कनाडा के इन्यूइट के एक गठबंधन द्वारा यह तर्क़ देते हुए दायर की गई याचिका कि अमरीका इन्यूइट के मानवाधिकारों का हनन कर रहा है, जलवायु परिवर्तन को मानवाधिकारों से जोड़ने का पहला प्रमुख प्रयास था। यद्यपि आयोग ने यह याचिका नामंजूर कर दी थी, तथापि इसने जलवायु परिवर्तन के समग्र विषय को एक नया और अलग आयाम दिया। मुख्य रूप से मालदीव के प्रयासों के कारण ही मानवाधिकार परिषद ने अपने 7/23 के संकल्प के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार पक्षों के विचारों को ध्यान में रखते हुए जलवायु परिवर्तन और मानवाधिकारों के बीच संबंधों के बारे में विस्तृत अध्ययन करने का अनुरोध किया। ओएचसीआर की रिपोर्ट जनवरी 2009 में प्रकाशित हुई (ए/एचआरसी/10/61)। इसने पाया कि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मानवाधिकारों के समस्त प्रभाव क्षेत्रों पर पड़ने की संभावना होती है। इससे जीवन का अधिकार, समुचित भोजन का अधिकार, जल का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, समुचित आवास का अधिकार और आत्मनिर्णय का अधिकार विशेष रूप से प्रभावित होता है। रोचक बात यह है कि रिपोर्ट में यह भी पाया गया है कि कृषि, ईंधन उत्पादन जैसे कतिपय शमनकारी उपायों से भी मानवाधिकारों, विशेषकर भोजन के अधिकार पर विपरीत गौण प्रभाव पड़ सकता है। रिपोर्ट में महिलाओं, बच्चों और स्थानीय लोगों जैसे विशिष्ट समूहों के अधिकारों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर भी गौर किया गया है। परंतु रिपोर्ट में कहा गया है कि इन अधिकारों को शुद्ध वैधानिक रूप से मानवाधिकारों का हनन नहीं कहा जा सकता। इसे हनन का मामला मानने में जो संकोच दिखाया गया है उसके पीछे कार्य-कारण संबंध जैसे कुछ कठिन व्यावहारिक मुद्दे हैं। इसके साथ ही यह तथ्य भी है कि जलवायु परिर्वतन के प्रभाव भावी अनुमान ही होते हैं। किसी देश विशेष के ऐतिहासिक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को किसी ख़ास तरह के जलवायु परिवर्तन प्रभाव से जोड़ने वाले कार्य-कारण संबंधों को अलग-अलग करना असंभव है। इसी प्रकार मानवाधिकार हनन का मामला तभी साबित होता है जब क्षति हो चुकी होती है अथवा होने को होती है। परंतु जलवायु परिवर्तन के मामले में भविष्य में पड़ने वाले प्रभावों के पूर्वानुमान को ही प्रतिकूल प्रभाव कहा जाता है। इस सबके बावजूद रिपोर्ट में कहा गया है कि मानवाधिकारों पर इनके प्रभावों का समाधान चिंता का एक प्रमुख कारण और अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत एक दायित्व बना हुआ है। मानवाधिकारों और जलवायु परिवर्तन के बीच यह अंतर्निहित मूलभूत संबंध भारत जैसे देश के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है। संविधान में दिए गए विभिन्न मौलिक अधिकारों पर जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव पर पहले से ही नज़र रखी जा रही है। भारतीय राज्य सत्ता के लिए मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को दूर करना एक संवैधानिक दायित्व बन गया है।

जलवायु परिवर्तन, भारतीय पर्यावरणीय विधिशास्त्र में चौथे चरण की शुरुआत कर सकता है। मौजूदा स्थिति में यद्यपि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को सीमित करने वाले ऐसे किसी कानून को बनाने की ज़रूरत नहीं है, जिससे देश की आर्थिक प्रगति में बाधा आए। तथापि पर्यावरण और मानवाधिकार विधिशास्त्र में अनेक ऐसी अवधारणाएं विद्यमान हैं जिनमें सरकार की ओर से कार्रवाई को आवश्यक समझा गया है। यह भारत में विकसित हो रहे जलवायु परिवर्तन विधिशास्त्र का एक ऐसा आधार बन सकता है जिसमें विकास के प्रयासों से समझौता करने की कोई आश्यकता न हो, परंतु साथ-ही-साथ पीढ़ियों के बीच और पीढ़ियों के भीतर समानता के व्यापक मुद्दों की ओर ध्यान दिया जा सके। ❑

(लेखका टेरी विश्वविद्यालय के डिपार्टमेंट ऑफ पॉलिसी स्टडीज़ में प्राध्यापक हैं।
ई-मेल : mvshiju@tere.res.in)

जलवायु परिवर्तन के संभावित परिणाम

● अरविन्द सिंह

वैश्विक जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को देखते हुए समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हरितगृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी गैसों के उत्सर्जन पर रोक लगाई जाए जिससे वैश्विक तापवृद्धि पर प्रभावी नियंत्रण हो सके और विश्व को जलवायु परिवर्तन के संभावित ख़तरों से बचाया जा सके

जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण वैश्विक उष्णता है जो हरितगृह (ग्रीनहाउस) प्रभाव का परिणाम है। हरितगृह प्रभाव वह प्रक्रिया है जिसमें पृथ्वी से टकराकर लौटने वाली सूरज की किरणों को वातावरण में उपस्थित कुछ गैसें अवशोषित कर लेती हैं। परिणामस्वरूप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है। कार्बन डाईऑक्साइड, मिथेन, क्लोरोफ्लोरोकार्बन, नाइट्रस ऑक्साइड तथा क्षोभमंडलीय ओजोन मुख्य गैसें हैं जो हरितगृह प्रभाव की कारक हैं। वातावरण में इनकी निरंतर बढ़ती मात्रा से वैश्विक जलवायु परिवर्तन का ख़तरा दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है।

पृथ्वी के सतह का औसत तापमान कोई 15° सेल्सियस है। हरितगृह प्रभाव के न होने पर जो तापमान होता, यह उससे तक़रीबन 33° सेल्सियस अधिक है। इन गैसों के अभाव में पृथ्वी सतह का अधिकांश भाग -18° सेल्सियस के औसत तापमान पर जमा हुआ होता। अत: इन गैसों की एक सीमा के भीतर पृथ्वी के वातावरण में उपस्थिति जीवन के लिए अनिवार्य है।

नगरीकरण, औद्योगीकरण, कोयले पर आधारित विद्युत तापगृह, तकनीकी तथा परिवहन क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन, कोयला खनन, मानव जीवन के रहन-सहन में परिवर्तन (विलासितापूर्ण जीवनशैली के कारण एयर कंडीशनर, रेफ्रिजरेटर, परफ्यूम आदि का वृहद पैमाने पर उपयोग), आधुनिक कृषि में रासायनिक खादों का अंधाधुंध प्रयोग, धान की खेती के क्षेत्रफल में वृद्धि, शाकभक्षी पशुओं की जनसंख्या में वृद्धि आदि कुछ ऐसे प्रमुख कारण हैं जो हरितगृह गैसों के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार हैं।

कार्बन डाईऑक्साइड सबसे प्रमुख हरितगृह गैस है जो आमतौर से जीवाश्म ईंधनों के जलने से उत्सर्जित होती है। यह गैस वातावरण में 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है तथा इसकी तापवृद्धि क्षमता 1 है। जैव ईंधनों के जलने से प्रतिवर्ष 5 करोड़ टन से भी ज्यादा कार्बन डाईऑक्साइड का जुड़ाव वातावरण में होता है जिसमें से 90 प्रतिशत से भी ज्यादा की उत्पत्ति उत्तरी तथा मध्य अमरीका, एशिया, यूरोप तथा मध्य एशियाई गणतंत्रों से होती है। पूर्व-औद्योगीकरण काल की तुलना में वायु में कार्बन डाईऑक्साइड का स्तर आज 31 प्रतिशत बढ़ गया है। चूंकि वन कार्बन डाईऑक्साइड के प्रमुख अवशोषक होते हैं अत: वनविनाश इस गैस की वातावरण में निरंतर वृद्धि का एक प्रमुख कारण है। वातावरण में 20 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड जुड़ाव के लिए वनविनाश जिम्मेदार है। वनविनाश के परिणामस्वरूप 1850 से 1950 के बीच लगभग 1.20 अरब टन कार्बन डाईऑक्साइड का वातावरण में जुड़ाव हुआ है। वातावरण में यह गैस 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। पिछले 100 वर्षों में कार्बन डाईऑक्साइड की वातावरण में 20 प्रतिशत बढ़ोतरी दर्ज़ की गई है। वर्ष 1880 से 1890 के बीच कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा लगभग 290 पीपीएम (पार्ट्स पर मिलियन), वर्ष 1980 में इसकी मात्रा 315 पीपीएम, वर्ष 1990 में 340 पीपीएम तथा वर्ष 2000 में 400 पीपीएम तक बढ़ गई है। ऐसी संभावना व्यक्त की जाती है कि वर्ष 2040 तक वातावरण में इस गैस की सांद्रता 450

पीपीएम तक बढ़ जाएगी। कार्बन डाईऑक्साइड का वैश्विक उष्णता बढ़ाने में 55 प्रतिशत का योगदान है।

मिथेन भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण हरितगृह गैस है जो 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वातावरण में बढ़ रही है। मिथेन की तापवृद्धि क्षमता 36 है। यह गैस कार्बन डाईऑक्साइड की तुलना में 20 गुना ज्यादा प्रभावी है। पिछले 100 वर्षों में मिथेन की वातावरण में दुगुनी वृद्धि हुई है। (7.0×10^{-7} से 15.5×10^{-7} तक) धान के खेत, दलदली भूमि तथा अन्य प्रकार की नम भूमियां मिथेन गैस के प्रमुख स्रोत हैं। एक अनुमान के अनुसार वातावरण में 20 प्रतिशत मिथेन की वृद्धि का कारण धान की खेती तथा 6 प्रतिशत कोयला खनन है। इसके अतिरिक्त पशुओं तथा दीमकों में आंतरिक किण्वन भी मिथेन के स्रोत हैं। सन् 1750 की तुलना में मिथेन की मात्रा में 150 प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक मिथेन एक प्रमुख हरितगृह गैस होगी। इस गैस का वैश्विक उष्णता में 20 प्रतिशत का योगदान है। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देश मिथेन उत्सर्जन के लिए ज्यादा उत्तरदायी हैं।

क्लोरोफ्लोरोकार्बन रसायनों का इस्तेमाल आमतौर से प्रशीतक, उत्प्रेरक तथा ठोस प्लास्टिक झाग के रूप में होता है। इस समूह के रसायन वातावरण में काफी स्थायी होते हैं। यह दो प्रकार के होते हैं- हाइड्रो फ्लोरो कार्बन तथा पर फ्लोरो कार्बन। हाइड्रो फ्लोरो कार्बन की वातावरण में वृद्धिदर 0.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष है तथा इसकी तापवृद्धि क्षमता 14,600 है। पर फ्लोरो कार्बन की भी वार्षिक वृद्धिदर 0.4 प्रतिशत है प्रतिवर्ष जबकि इसकी तापवृद्धि क्षमता 17,000 है। हाइड्रो फ्लोरो कार्बन का वैश्विक तापवृद्धि में 6 प्रतिशत का योगदान है जबकि पर फ्लोरो कार्बन का वैश्विक तापवृद्धि में 12 प्रतिशत का योगदान है। क्लोरोफ्लोरोकार्बनों की वातावरण में 25 प्रतिशत वृद्धि औद्योगीकरण के कारण हुई है। अत: विकासशील देशों की तुलना में विकसित देश क्लोरोफ्लोरोकार्बनों के उत्सर्जन के लिए ज्यादा जिम्मेदार हैं।

नाइट्रस ऑक्साइड गैस 0.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वातावरण में बढ़ रही है तथा इसकी तापवृद्धि क्षमता 140 है। जैव ईंधन, जीवाशम ईंधन तथा रासायनिक खादों का कृषि में अत्यधिक उपयोग इसके उत्सर्जन के प्रमुख कारक हैं। मृदा में रासायनिक खादों पर सूक्ष्मजीवों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप नाइट्रस ऑक्साइड का निर्माण होता है तत्पश्चात इस गैस का वातावरण में उत्सर्जन होता है। वातावरण में इस गैस की वृद्धि के लिए रासायनिक खाद 70 से 80 प्रतिशत तथा जीवाश्म ईंधन 20 से 30 प्रतिशत तक जिम्मेदार हैं। इस गैस का वैश्विक तापवृद्धि में 5 प्रतिशत का योगदान है। नाइट्रस ऑक्साइड सम तापमंडलीय ओजोन पट्टी के क्षरण के लिए भी जिम्मेदार है। ओजोन क्षरण से भी वैश्विक उष्णता में वृद्धि होगी।

क्षोभमंडलीय ओजोन भी एक महत्वपूर्ण हरितगृह गैस है जो 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वातावरण में बढ़ रही है। इस गैस की तापवृद्धि क्षमता 430 है। ओजोन का निर्माण आमतौर से सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में नाइट्रोजन डाईऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बंस की प्रतिक्रिया स्वरूप होता है। ओजोन गैस का वैश्विक तापवृद्धि में 2 प्रतिशत का योगदान है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त 1997 के क्योटो प्रोटोकॉल में सल्फर हेक्सा फ्लोराइड को भी एक प्रमुख हरितगृह गैस के रूप में पहचाना गया है।

ट्राईफ्लोरो मिथाइल सल्फर पेंटाफ्लोराइड भी एक गौण हरितगृह गैस है जिसका उत्सर्जन रक्षा उद्योगों से होता है। इस गैस की उष्मा अवशोषण की क्षमता कार्बन डाईऑक्साइड की तुलना में 18,000 गुना ज्यादा होती है।

जहां तक हरितगृह गैसों के उत्सर्जन का सवाल है संयुक्त राज्य अमरीका प्रतिवर्ष 20 टन से भी अधिक प्रतिव्यक्ति हरिगृह गैसों का उत्सर्जन करता है। वहीं रूस 11.71 टन, जापान 9.87, यूरोपीय संघ 9.4, चीन 3.6 तथा भारत 1.2 टन प्रतिव्यक्ति हरितगृह गैसों का उत्सर्जन करते हैं।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन के संभावित परिणाम

हाल के दशकों में हरितगृह प्रभाव के चलते अनेक क्षेत्रों में औसत तापमान में बढ़ोतरी दर्ज़ की गई है। वैज्ञानिकों की भविष्यवाणी के अनुसार वर्ष 2020 तक पूरी दुनिया का तापमान पिछले 1,000 वर्षों की तुलना में सर्वाधिक होगा। अंतर-शासकीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आईपीसीसी) ने वर्ष 1995 में भविष्यवाणी की थी कि अगर मौजूदा प्रवृत्ति जारी रही तो 21वीं सदी में तापमान में 3.5 से 10 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि होगी। बीसवीं सदी में विश्व की सतह का औसत तापमान 0.6 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ा है। वैश्विक स्तर पर वर्ष 1998 सबसे गर्म वर्ष था और वर्ष 1990 का दशक अभी तक का सबसे गर्म दशक था जो यह साबित करता है कि हरितगृह प्रभाव के परिणामस्वरूप जलवायु परिवर्तन का दौर आरंभ हो चुका है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के अनेक परिणाम होंगे जिनमें से ज्यादातर हानिकारक होंगे।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप दुनिया के मानसूनी क्षेत्रों में वर्षा में वृद्धि होगी जिससे बाढ़, भूस्खलन तथा भूमि अपरदन जैसी समस्याएं पैदा होंगी। जल की गुणवत्ता में गिरावट आएगी। ताज़े जल की आपूर्ति पर गंभीर प्रभाव पड़ेंगे।

जहां तक भारत का सवाल है, मध्य तथा उत्तरी भारत में कम वर्षा होगी जबकि इसके विपरीत देश के पूर्वोत्तर तथा दक्षिण-पश्चिमी राज्यों में अधिक वर्षा होगी। परिणामस्वरूप वर्षा जल की कमी से मध्य तथा उत्तरी भारत में सूखे जैसी स्थिति होगी जबकि पूर्वोत्तर तथा दक्षिण पश्चिमी राज्यों में अधिक वर्षा के कारण बाढ़ जैसी समस्या होगी। दोनों ही स्थितियों में कृषि उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। सूखा और बाढ़ के दौरान पीने और कपड़े धोने के लिए स्वच्छ जल की उपलब्धता कम होगी। जल प्रदूषित होगा तथा जल निकास की व्यवस्थाओं को हानि पहुंचेगी।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन जलस्रोतों के वितरण को भी प्रभावित करेगा। उच्च अक्षांश वाले देशों तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के जल स्रोतों में जल की अधिकता होगी जबकि मध्य एशिया में जल की कमी होगी। निम्न अक्षांश वाले देशों में जल की कमी होगी।

जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप ध्रुवीय बर्फ़ के पिघलने के कारण विश्व का औसत समुद्रीजलस्तर इक्कीसवीं शताब्दी के अंत तक 9 से 88 सेमी तक बढ़ने की संभावना है जिससे दुनिया की आधी से अधिक आबादी, जो समुद्र से 60 किमी की दूरी तक रहती है, पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। बांग्लादेश का गंगा-ब्रह्मपुत्र डेल्टा, मिस्र का नील डेल्टा तथा मार्शल द्वीप और मालदीव सहित अनेक छोटे

द्वीपों का अस्तित्व वर्ष 2100 तक समाप्त हो जाएगा। इसी ख़तरे की ओर संपूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित करने के लिए अक्तूबर 2009 में मालदीव सरकार की कैबिनेट ने समुद्र के भीतर बैठकर एक अनूठा प्रयोग किया था। इस बैठक में दिसंबर 2009 के कोपेनहेगन सम्मेलन के लिए एक घोषणापत्र भी तैयार किया गया था। प्रशांत महासागर का सोलोमन द्वीप जलस्तर में वृद्धि के कारण डूबने के कगार पर है।

जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारत के उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गोवा, गुजरात तथा पश्चिम बंगाल राज्यों के तटीय क्षेत्र जलमग्नता के शिकार होंगे। परिणामस्वरूप आसपास के गांवों व शहरों में 10 करोड़ से भी अधिक लोग विस्थापित होंगे जबकि समुद्र में जलस्तर की वृद्धि के परिणामस्वरूप भारत के लक्षद्वीप तथा अंडमान निकोबार द्वीपों का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। समुद्र का जलस्तर बढ़ने से मीठे जल के स्रोत दूषित होंगे परिणामस्वरूप पीने के पानी की समस्या होगी।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन का प्रभाव समुद्र में पाए जाने वाली जैव-विविधता संपन्न प्रवाल भित्तियों पर पड़ेगा जिन्हें महासागरों का उष्ण कटिबंधीय वर्षावन कहा जाता है। समुद्री जल में उष्णता के परिणामस्वरूप शैवालों (सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों) पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा जोकि प्रवाल भित्तियों को भोजन तथा वर्ण प्रदान करते हैं। उष्ण महासागर विरंजन प्रक्रिया के कारक होंगे जो इन उच्च उत्पादकता वाले परितंत्रों को नष्ट कर देंगे। प्रशांत महासागर में वर्ष 1997 में अलनीनो के कारण बढ़ने वाली ताप की तीव्रता प्रवालों की मृत्यु का सबसे गंभीर कारण बनी है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी की लगभग 10 प्रतिशत प्रवाल भित्तियों की मृत्यु हो चुकी है, 30 प्रतिशत गंभीर रूप से प्रभावित हुई हैं तथा 30 प्रतिशत का क्षरण हुआ है। ग्लोबल कोरल रीफ मॉनीटरिंग नेटवर्क (ऑस्ट्रेलिया) का अनुमान है कि वर्ष 2050 तक सभी प्रवाल भित्तियों की मृत्यु हो जाएगी।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कृषि पैदावार पर पड़ेगा। संयुक्त राज्य अमरीका में फ़सलों की उत्पादकता में कमी आएगी जबकि दूसरी तरफ उत्तरी तथा पूर्वी अफ्रीका, मध्य पूर्व देशों, भारत, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया तथा मैक्सिको में गर्मी तथा नमी के कारण फ़सलों की उत्पादकता में बढ़ोतरी होगी। वर्षा जल की उपलब्धता के आधार पर धान के क्षेत्रफल में इज़ाफ़ा होगा।

भारत में जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप गन्ना, मक्का, ज्वार, बाजरा तथा रागी जैसी फ़सलों की उत्पादन दर में वृद्धि होगी जबकि इसके विपरीत मुख्य फ़सलों जैसे गेहूं, धान तथा जौ की उपज में गिरावट दर्ज़ होगी। सब्ज़ियों के राजा आलू के उत्पादन में भी अभूतपूर्व गिरावट दर्ज़ होगी।

तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप दलहनी फ़सलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की दर में वृद्धि के कारण अरहर, चना, मटर, मूंग, उड़द, मसूर आदि की उपज में वृद्धि होगी। तिलहनी फ़सलों जैसे पीली सरसों, भूरी सरसों (राई), सूरजमुखी, तिल, काला तिल, अलसी, बर्रा (कुसुम) की पैदावार में गिरावट होगी जबकि सोयाबीन तथा मूंगफली की पैदावार में वृद्धि होगी।

एक अनुमान के अनुसार अगर वर्तमान वैश्विक तापवृद्धि की दर जारी रही तो भारत में वर्षा सिंचित क्षेत्रों में 12,5 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन में कमी आएगी। शीत ऋतु में 0.50 सेल्सियस तापमान वृद्धि के कारण पंजाब राज्य में गेहूं की फ़सल की पैदावार में 10 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है।

भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय देश में जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप आम, केला, पपीता, चीकू, अनानास, शरीफा, अनार, बेल, खजूर, जामुन, अंजीर, बेर, तरबूज तथा खरबूजा जैसे फलों के उत्पादन में बढ़ोतरी होगी जबकि सेब, आलू बुखारा, अंगूर, नाशपाती जैसे फलों के पैदावार में गिरावट आएगी।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव फ़सल पद्धति पर भी पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप उत्तर तथा मध्य भारत में ज्वार, बाज़रा, मक्का तथा दलहनी फ़सलों के क्षेत्रफल में विस्तार होगा। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में गेहूं तथा धान के क्षेत्रफल में अभूतपूर्व गिरावट आएगी जबकि देश के पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी राज्यों में धान के क्षेत्रफल में बढ़ोतरी होगी।

वातावरण में ज्यादा ऊर्जा के जुड़ाव से वैश्विक वायु पद्धति में भी परिवर्तन होगा। वायु पद्धति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वर्षा का वितरण असमान होगा। भविष्य में मरुस्थलों में ज्यादा वर्षा होगी जबकि इसके विपरीत पारंपरिक कृषि वाले क्षेत्रों में कम वर्षा होगी। इस तरह के परिवर्तनों से विशाल मानव प्रव्रजन को बढ़ावा मिलेगा जोकि मानव समाज के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक ताने-बाने को प्रभावित करेगा।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप बाढ़, सूखा तथा आंधी-तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं की बारंबारता में वृद्धि के कारण अनाज उत्पादन में गिरावट दर्ज़ होगी। स्थानीय खाद्यान्न उत्पादन में कमी भूखमरी और कुपोषण का कारण बनेगी जिससे स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ेंगे। खाद्यान्न और जल की कमी से प्रभावित क्षेत्रों में टकराव पैदा होंगे।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव जैव-विविधता पर भी पड़ेगा। किसी भी प्रजाति को अनुकूलन हेतु समय की आवश्यकता होती है। वातावरण में अचानक परिवर्तन से अनुकूलन के अभाव में उसकी मृत्यु हो जाएगी। जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव समुद्र के तटीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली दलदली क्षेत्र की वनस्पतियों पर पड़ेगा जो तट को स्थिरता प्रदान करने के साथ-साथ समुद्री जीवों के प्रजनन का आदर्श स्थल भी होती हैं। दलदली वन जिन्हें ज्वारीय वन भी कहा जाता है, तटीय क्षेत्रों को समुद्री तूफानों से रक्षा करने का भी कार्य करते हैं। जैव-विविधता क्षरण के परिणामस्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन का ख़तरा बढ़ेगा।

जलवायु में उष्णता के कारण उष्ण कटिबंधीय वनों में आग लगने की घटनाओं में वृद्धि होगी परिणामस्वरूप वनों के विनाश के कारण जैव-विविधता का ह्रास होगा।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर भी पड़ेगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार जलवायु में उष्णता के कारण श्वास तथा हृदय संबंधी बीमारियों में वृद्धि होगी। दुनिया के विकासशील देशों में दस्त, पेचिश, हैजा, क्षयरोग, पीत ज्वर तथा मियादी बुखार जैसी संक्रामक बीमारियों की बारंबारता में वृद्धि होगी। चूंकि बीमारी फैलाने वाले रोगवाहकों के गुणन एवं विस्तार में तापमान तथा वर्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है अतः दक्षिण अमरीका, अफ्रीका तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में मच्छरों से फैलने वाली बीमारियों जैसे– मलेरिया (शीत ज्वर), डेंगू, पीला बुखार तथा जापानी बुखार (मेनिन्जाइटिस) के प्रकोप में बढ़ोतरी के कारण इन बीमारियों

से होने वाली मृत्युदर में इज़ाफ़ा होगा। इसके अतिरिक्त फ़ाइलेरिया (फ़ीलपांव) तथा चिकनगुनिया का भी प्रकोप बढ़ेगा। मच्छरजनित बीमारियों का विस्तार उत्तरी अमरीका तथा यूरोप के ठंडे देशों में भी होगा। मानव स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के चलते एक बड़ी आबादी विस्थापित होगी जो 'पर्यावरणीय शरणार्थी' कहलाएगी। स्वास्थ्य संबंधी और भी समस्याएं पैदा होंगी।

जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप न सिर्फ़ रोगाणुओं में बढ़ोतरी होगी अपितु इनकी नयी प्रजातियों की भी उत्पत्ति होगी जिसके परिणामस्वरूप फ़सलों की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। फ़सलों की नाशिजीवों तथा रोगाणुओं से सुरक्षा हेतु नाशीजीवनाशकों के उपयोग की दर में बढ़ोतरी होगी जिससे वातावरण प्रदूषित होगा साथ ही मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

नाशिजीवों तथा रोगाणुओं की जनसंख्या में वृद्धि तथा इनकी नयी प्रजातियों की उत्पत्ति का प्रभाव दुधारू पशुओं पर भी पड़ेगा जिससे दुग्ध उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय देश में जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप पुष्पीय पौधों के पोयेसी, साइप्रेसी, फैबेसी, यूर्फोबियेसी, अमरेंथेसी तथा एस्केलपिडेसी कुलों से संबद्ध खरपतवारों की जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि होगी परिणामस्वरूप इन ख़रपतवारों का प्रकोप बढ़ेगा जिससे फ़सलों की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। कृषि उत्पादकता में बढ़ोतरी हेतु रासायनिक खरपतवारनाशकों पर निर्भरता में वृद्धि होगी।

तापवृद्धि के कारण वाष्पीकरण तथा वाष्पोत्सर्जन की दर में अभूतपूर्व वृद्धि होगी परिणामस्वरूप मृदा जल के साथ ही जलाशयों में जल की कमी होगी जिससे फ़सलों को पर्याप्त जल उपलब्ध न होने के कारण उनकी पैदावार प्रभावित होगी। भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय देश में जलाशयों में जल की कमी के कारण सिंघाड़े तथा मख़ाने की खेती पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसके अतिरिक्त मत्स्यपालन तथा उत्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव जलीय जंतुओं पर भी पड़ेगा। मीठे जल की मछलियों का प्रव्रजन ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर होगा जबकि शीतल जल मछलियों का आवास नष्ट हो जाएगा। परिणामस्वरूप बहुत-सी मछलियों की प्रजातियां विलुप्त हो जाएंगी।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री तूफ़ानों की बारंबारता में वृद्धि होगी जिसके परिणामस्वरूप तटीय क्षेत्रों में ज़ान-माल की क्षति होगी। इसके अतिरिक्त अल नीनो की बारंबारता में भी बढ़ोतरी होगी जिससे एशिया, अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया महाद्वीपों में सूखे की स्थिति उत्पन्न होगी जबकि वही दूसरी तरफ़ उत्तरी अमरीका में बाढ़ जैसी आपदा का प्रकोप होगा। दोनों ही स्थितियों में कृषि उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव हिमनदों (ग्लेशियर) पर भी पड़ेगा। उष्णता के कारण हिमनद पिघल कर खत्म हो जाएंगे। एक शोध के अनुसार भारत के हिमालय क्षेत्र में वर्ष 1962 से 2000 के बीच हिमनद 16 प्रतिशत तक घटे हैं। पश्चिमी हिमालय में हिमनदों के पिघलने की प्रक्रिया में तेज़ी आई है। बहुत-से छोटे हिमनद पहले ही विलुप्त हो चुके हैं। कश्मीर में कोल्हाई हिमनद 20 मीटर तक पिघल चुका है। गंगोत्री हिमनद 23 मीटर प्रतिवर्ष की दर से पिघल रहा है। अगर पिघलने की वर्तमान दर कायम रही तो जल्दी ही हिमालय से सभी हिमनद समाप्त हो जाएंगे जिससे गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सतलज, रावी, झेलम, चिनाब, व्यास आदि नदियों का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। इन नदियों पर स्थित जलविद्युत ऊर्जा इकाइयां बंद हो जाएंगी। परिणामस्वरूप विद्युत उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसके अतिरिक्त सिंचाई हेतु जल की कमी के कारण कृषि उत्पादकता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। उपर्युक्त नदियों का अस्तित्व समाप्त हो जाने से भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा बांग्लादेश भी प्रभावित होंगे।

वैश्विक जलवायु उष्णता के परिणामस्वरूप जीवांश पदार्थों के तेज़ी से विघटन के कारण पोषक चक्र की दर में बढ़ोतरी होगी जिसके कारण मृदा की उपजाऊ क्षमता अव्यवस्थित हो जाएगी जो कृषि पैदावार को प्रभावित करेगी।

वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की वृद्धि के कारण पौधों में कार्बन स्थिरीकरण में बढ़ोतरी होगी। परिणामस्वरूप मृदा से पोषक तत्वों के अवशोषण की दर कई गुना बढ़ जाएगी जिसके कारण मृदा की उर्वरा शक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए रासायनिक खादों के उपयोग की दर में वृद्धि होगी।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव वनस्पतियों तथा जंतुओं पर भी पड़ेगा। स्थानीय महासागर उष्णता 3 डिग्री सेल्सियस बढ़ने के कारण प्रशांत महासागर में सोलोमन मछली की आबादी में अभूतपूर्व गिरावट दर्ज़ की गई है। बढ़ती उष्णता के कारण वसंत ऋतु में जल्दी बर्फ़ पिघलने के कारण हडसन की खाड़ी में ध्रुवीय भालुओं की जनसंख्या में गिरावट आई है।

जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक दुष्प्रभाव सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों पर पड़ेगा। आर्थिक क्षेत्र का भौतिक मूल ढांचा जलवायु परिवर्तन द्वारा सर्वाधिक प्रभावित होगा। बाढ़, सूखा, भूस्खलन तथा समुद्री जलस्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर मानव प्रव्रजन होगा जिससे सुरक्षित स्थानों पर भीड़भाड़ की स्थिति पैदा होगी। उष्णता से प्रभावित क्षेत्रों में प्रशीतन हेतु ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता होगी।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन एक गंभीर वैश्विक समस्या है जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व में बड़े पैमाने पर उथल-पुथल होगी। जलवायु परिवर्तन के कारण दुनिया से द्वीपों का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। प्राकृतिक आपदाओं जैसे– सूखा, बाढ़, समुद्री तूफान, अलनीनो की बारंबारता में बढ़ोतरी होगी। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप फ़सलों की उत्पादकता में वृद्धि हेतु कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों तथा रासायनिक ख़ादों पर निर्भरता बढ़ेगी जिससे न सिर्फ़ पर्यावरण प्रदूषित होगा अपितु भारत जैसे विकासशील देश में किसानों की आर्थिक दशा में गिरावट होगी। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को देखते हुए समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हरितगृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी गैसों के उत्सर्जन पर रोक लगाई जाए जिससे वैश्विक तापवृद्धि पर प्रभावी नियंत्रण हो सके और विश्व को जलवायु परिवर्तन के संभावित ख़तरों से बचाया जा सके। ❑

(लेखक पारिस्थितिकविद हैं और वनस्पति विज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से संबद्ध हैं।

ई-मेल : arvindsingh_bhu@yahoo.com

विकासशील देशों की भूमिका

● ओ. पी. शर्मा

आर्थिक विकास की दौड़ में हमारा पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ चुका है। विश्व में आज खाद्यान्न संकट, ऊर्जा की कमी, आर्थिक मंदी आदि समस्याएं मुंह बाएं खड़ी हैं। इन सबका संबंध कमोबेश जलवायु परिवर्तन से भी है। प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण कई प्रकृतिजन्य संकट सामने खड़े हैं। पृथ्वी का तापमान बढ़ने से ग्लेशियर पिघल रहे हैं, समुद्री जलस्तर बढ़ने से कई द्वीप विलुप्त हो चुके हैं एवं गंगा नदी प्रदूषित हो गई है। ओज़ोन परत में छेद हो जाने के कारण इसकी सूर्य की पराबैंगनी किरणों को रोकने की क्षमता घट रही है। कुल मिलाकर प्रकृति के निर्मम संहार के चलते उत्पन्न जलवायु परिवर्तन आज विश्व के समक्ष ज्वलंत और मुखर चुनौती बन गई है। जलवायु परिवर्तन पर चिंतन करने और इससे निपटने के लिए विश्व के देश 7-18 दिसंबर, 2009 में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में इकट्ठा हुए। इस सम्मेलन में 192 देशों के लगभग 15,000 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। जलवायु परिवर्तन पर यह अब तक का सबसे बड़ा सम्मेलन था। इसके लिए डेनमार्क के राष्ट्रपति लार्स लोक्को रासमुसेन ने सभी देशों को आगे आने का आह्वान किया था। इस सम्मेलन के महत्वपूर्ण विषयों में क्योटो प्रोटोकॉल में निर्धारित किए गए कार्बन उत्सर्जन कटौती के लक्ष्यों का नवीकरण तथा वर्ष 2012 के बाद की रूपरेखा बनाना शामिल किया गया था।

आज जलवायु परिवर्तन के कारण जहां पृथ्वी का अस्तित्व ख़तरे में है वहीं इस मुद्दे पर विकसित और विकासशील देशों के बीच विवाद गहराता जा रहा है। इस कारण जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए ठोस और दीर्घकालिक रणनीति नहीं बन पा रही है। जलवायु परिवर्तन पर क्योटो प्रोटोकॉल उल्लेखनीय है, किंतु 12 वर्ष बीत जाने के बावजूद इस पर अमल नहीं हो सका है। चिंता की बात यह है कि जहां एक ओर भारत समेत अन्य कई विक़ासशील देश क्योटो प्रोटोकॉल को बचाने तथा लागू करवाने के लिए प्रयत्नशील हैं, वहीं विकसित देश इसमें नवीकरण के लिए अड़े हुए हैं। इन विकसित देशों ने कोपेनहेगन सम्मेलन के महत्वपूर्ण विषयों में क्योटो प्रोटोकॉल के कार्बन उत्सर्जन कटौती के लक्ष्यों के नवीकरण की बात को सम्मिलित करवाने में सफलता भी प्राप्त कर ली है। गौरतलब है कि कोपेनहेगन जलवायु परिवर्तन समझौते में क्रार्बन उत्सर्जन कटौती की कानूनन बाध्यता को सम्मिलित नहीं किया गया है, जबकि क्योटो प्रोटोकॉल में विकसित देशों के कार्बन उत्सर्जन कटौती की कानूनी बाध्यता की बात मुखरता से कही गई थी।

कोपेनहेगन समझौता

कोपेनहेगन के संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में 18 दिसंबर, 2009 को अमरीका और बेसिक देशों (ब्राज़ील, दक्षिण अफ्रीका, भारत और चीन) की पहल पर गैर-बाध्यकारी राजनीतिक समझौता हुआ। इसमें क्रार्बन उत्सर्जन में बड़े पैमाने पर कटौती को आवश्यक बताया गया जिससे तापमान में वृद्धि को अधिकतम 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे सीमित किया जा सके। इसमें विकसित देशों के लिए कटौती लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं तथा बड़े विकासशील देशों के लिए स्वैच्छिक प्रतिबद्धता का उल्लेख किया गया है। समझौते में क्रार्बन उत्सर्जन कटौती को कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं बनाया गया है, किंतु उभरती अर्थव्यवस्था वाले देश क्रार्बन उत्सर्जन कटौती के प्रयासों पर स्वयं नज़र रखेंगे। वे प्रत्येक दो वर्ष पर इसकी सूचना संयुक्त राष्ट्र को देंगे। कुछ अंतरराष्ट्रीय समूह इसकी जांच भी कर सकते हैं। जलवायु परिवर्तन पर दिसंबर 2010 तक कानूनी रूप से बाध्यकारी समझौता लागू किए जाने का प्रस्ताव है। विकसित देश विकासशील देशों को वर्ष 2020 तक प्रतिवर्ष 100 अरब डॉलर की राशि मुहैया कराते रहेंगे साथ ही 2010-12 के लिए अल्पावधि वित्तीय सहायता दी जाएगी।

संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की मून ने सम्मेलन की समाप्ति पर कहा कि हम समझौते पर पहुंच गए हैं, लेकिन इस पर आम सहमति नहीं बन सकी। कई विकासशील देशों ने कोपेनहेगन समझौते को कमज़ोर बताते हुए इसे मानने से इंकार कर दिया। क्यूबा, निकारागुआ, बोलिविया, वेनेजुएला आदि देशों ने इसे संयुक्त राष्ट्र समझौता मानने से इंकार कर दिया क्योंकि इसके लिए सभी 194 देशों की सहमति आवश्यक है। इन देशों के अनुसार कोपेनहेगन समझौते से जलवायु परिवर्तन की समस्या का समाधान खोज़ने में मदद नहीं मिलेगी। उधर अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने कोपेनहेगन समझौते को पहला महत्वपूर्ण क़दम बताया है। उनके अनुसार भविष्य में जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक कार्रवाई के लिए प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में बनी यह सहमति मील का पत्थर सिद्ध होगी।

मध्यवर्गीय ताक़त का उदय

हाल के दशकों में विश्व की ध्रुवीय व्यवस्था में तेज़ी से बदलाव हुए हैं। इस दृष्टि से 21वीं शताब्दी का पहला दशक (2000-09) महत्वपूर्ण रहा। जी-8 सदैव प्रभाव में रहा। विश्व व्यवस्था में जी-77 और जी-20 भी सुर्खियों में रहे। हाल

ही में विश्व अर्थव्यवस्था में 'ब्रिक' और 'बेसिक' चर्चित हुए हैं। गोल्डमैन के ब्रिक में ब्राज़ील, रूस, भारत और चीन सम्मिलित हैं। कोपेनहेगन जलवायु सम्मेलन में 'बेसिक' (बीएएसआईसी) का गठन हुआ जिसमें ब्राज़ील, दक्षिण अफ्रीका, भारत और चीन सम्मिलित हैं। इन सभी विश्व व्यवस्थाओं में भारत महत्वपूर्ण भागीदारी निभा रहा है। हालांकि जी-8 में भारत सम्मिलित नहीं है, किंतु इसके शिखर सम्मेलनों में भारत को विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता है।

वर्तमान में भारत मध्यवर्गीय ताक़त के रूप में उभर रहा है। भारत के साथ इस वर्ग में चीन, ब्राज़ील, दक्षिण अफ्रीका आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। ये मध्यवर्गीय शक्ति के देश हालांकि विकसित नहीं हुए हैं मगर अब ये गरीब नहीं हैं। अब ये विश्व व्यवस्था में बदलाव लायक बड़े हो गए हैं। इस बदलती हुई विश्व व्यवस्था में भारत के लिए यह बात बल पकड़ रही है कि इसके जी-77 से दूरी बढ़ने पर ग़रीब देशों के नेतृत्व में कमी आ सकती है। बदली भूमिका में भारत को विकसित देशों की ज़मात में भी बैठना है। कोपेनहेगन में भारत ने बेसिक के पक्ष में जी-77 के हितों को गौण रखा हालांकि बेसिक एवं जी-77 के पक्षधर कहते हैं– भारत के मध्यवर्गीय ताक़त के रूप में उभरने से इसके समक्ष चुनौती भी बढ़ रही है। एक तरफ भारत की गरीब देशों से दूरी बढ़ रही है तो दूसरी तरफ विकसित देशों में प्रभाव अधिक नहीं बढ़ रहा है। भारत वैश्विक निर्णयों को मनवाने की भूमिका में कमज़ोर पड़ जाता है। वहीं विकसित देश आर्थिक मज़बूती के बल पर जी-77 को आर्थिक सहायता मुहैया कराकर समर्थन ख़रीद लेते हैं जिससे मध्यवर्गीय शक्तियों के लिए वैश्विक व्यवस्था में बड़े बदलाव की भूमिका क्षीण पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में भारत को ब्रिक, बेसिक और जी-20 जैसे संगठनों के साथ मिलकर काम करना चाहिए।

विकसित देशों का प्रभाव

अंतरराष्ट्रीय स्वयंसेवी संस्था डब्ल्यूडब्ल्यूएफ के वरिष्ठ अधिकारी किम कार्सटेशन के अनुसार धनी देश जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में सहयोग के लिए पर्याप्त आर्थिक मदद नहीं दे रहे हैं जबकि जलवायु परिवर्तन के लिए विकसित देश अधिक जिम्मेदार हैं। विश्व बैंक के एक सर्वेक्षण के अनुसार जलवायु परिवर्तन पर विकासशील देशों को वार्षिक 75 अरब डॉलर की आवश्यकता है जबकि अगले तीन वर्षों तक (2012 तक) 10 अरब डॉलर वार्षिक की मदद अनुमानित है। कोपेनहेगन सम्मेलन में विकसित देशों ने 2020 तक विकासशील देशों को प्रतिवर्ष 100 अरब डॉलर राशि मुहैया कराने की बात कहकर विकासशील देशों की सहानुभूति बटोरी और कोपेनहेगन में कार्बन उत्सर्जन कटौती पर कानूनन गैर-बाध्यकारी समझौता लागू करने में सफलता प्राप्त कर ली।

कोपेनहेगन समझौता विकसित देशों का हितपोषक दृष्टिगोचर होता है। जलवायु परिवर्तन पर विकसित देशों की कथनी और करनी में अंतर है। क्योटो प्रोटोकॉल इसका उदाहरण है। गत वर्षों में विकसित देशों का क़ार्बन उत्सर्जन बढ़ा है। हालांकि कोपेनहेगन में विकसित देशों के लिए कार्बन उत्सर्जन कटौती के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं साथ ही बड़े विकासशील देशों के लिए स्वैच्छिक प्रतिबद्धता रखी गई है, किंतु कार्बन उत्सर्जन कटौती के कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं होने से ऐसा नहीं लगता कि ये विकसित और बड़े विकासशील देश क़ार्बन उत्सर्जन में लक्ष्यों के अनुरूप कटौती करके प्रकृति की रक्षा में कारगर पहल करेंगे। मगर कोपेनहेगन समझौते में आशा की एक किरण यह दिखती है कि इसमें जलवायु परिवर्तन पर दिसंबर 2010 तक कानूनन बाध्यकारी समझौता लागू करने का प्रस्ताव है। अगर दिसंबर 2010 तक बाध्यकारी समझौता लागू हो जाता है तो यह जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर उपलब्धि होगा। किंतु उस समय यह ध्यान में रखना होगा कि विकसित देशों के कार्बन उत्सर्जन के लक्ष्य बहुत बड़े होने चाहिए और जो बड़े विकासशील देश हैं, जिनका प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन कम है उन पर कार्बन उत्सर्जन कटौती के बड़े लक्ष्य का बोझ नहीं डाला जाना चाहिए। ऐसा नहीं होने पर बड़े विकासशील देश विकसित होने के मार्ग पर आगे कैसे बढ़ सकेंगे?

क्योटो प्रोटोकॉल

जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर क्योटो प्रोटोकॉल उल्लेखनीय है। विकसित देशों द्वारा 12 वर्ष पूर्व (1997) क्योटो में कार्बन उत्सर्जन में कटौती के वादे किए गए थे। क्योटो प्रोटोकॉल जलवायु परिवर्तन पर प्रासंगिक है। अगर क्योटो प्रोटोकॉल पर दुनिया के सभी देश सहमत हो जाएं और इसका विस्तार हो जाए तो जलवायु परिवर्तन पर किसी नये समझौते की आवश्यकता नहीं होगी। चिंता की बात यह है कि विकसित देश क्योटो प्रोटोकॉल में बदलाव चाहते हैं। गौरतलब है क्योटो प्रोटोकॉल में संधि पर हस्ताक्षर करने वाले औद्योगिक देशों को वर्ष 2012 तक कार्बन उत्सर्जन में वर्ष 1990 की तुलना में सामूहिक रूप से औसतन 5.2 प्रतिशत कम करने का बाध्यकारी लक्ष्य दिया गया था। इस संधि में विकासशील देशों के लिए कटौती लक्ष्य निर्धारित नहीं किए गए थे। हालांकि स्वेच्छा से कार्बन उत्सर्जन कम करने के प्रयास करने पर वित्तीय व अन्य प्रोत्साहनों की व्यवस्था की गई थी। संभवत: भारत ने इसी बात को दृष्टिगत रखकर वर्ष 2020 तक कार्बन उत्सर्जन में 15 से 20 प्रतिशत कटौती की घोषणा स्वेच्छा से की। हालांकि विकासशील देश होने के कारण भारत पर कार्बन उत्सर्जन की कटौती की बाध्यता नहीं है। चीन ने भारत से पहले क़ार्बन उत्सर्जन कटौती की स्वैच्छिक घोषणा की। चीन को क़ार्बन उत्सर्जन कटौती की बाध्यता तो नहीं है, किंतु वहां कार्बन उत्सर्जन की अधिकता के कारण इसमें कटौती आवश्यक है। जब चीन और भारत जैसे बड़े विकासशील देशों ने कार्बन उत्सर्जन में कटौती की स्वैच्छिक घोषणा कर दी है तो फिर विकसित देशों द्वारा क्योटो प्रोटोकॉल में बदलाव या किसी नये समझौते की मांग का औचित्य नहीं है। विकसित देश क्योटो प्रोटोकॉल की समय सीमा बढ़ाने पर ज़ोर दे रहे हैं। इसके विपरीत विकासशील देश, विशेष रूप से बेसिक देश क्योटो प्रोटोकॉल में कोई बदलाव नहीं चाहते और न ही वे इसकी समयावधि बढ़ाने के पक्ष में हैं। अफ्रीकी और जी-77 के देश भी बेसिक देशों के समर्थन में खड़े हैं। भारत में प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन कम है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में कार्बन उत्सर्जन अगले दो दशकों तक (2030) यूरोपीय देशों की तुलना में कम रहेगा। इस रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2031 में भारत के शहर में रह रहा तीसरा सबसे धनी व्यक्ति भी यूरोपीय संघ के आज के (2009) औसत विद्युत उपभोग का तीसरा हिस्सा ही इस्तेमाल करेगा। विश्व बैंक द्वारा यह रिपोर्ट कोपेनहेगन में भारत के विभिन्न क्षेत्रों और पक्षों के अध्ययन के आधार पर तैयार की गई है। ऐसी स्थिति में भारत पर कार्बन उत्सर्जन में कटौती के लिए दबाव डालना उचित नहीं है।

जलवायु परिवर्तन और भारत

वर्तमान आर्थिक परिप्रेक्ष्य में जलवायु परिवर्तन

मुद्दे पर भारत की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। दुनिया के विकसित देश प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और क़ार्बन उत्सर्जन के बल पर आर्थिक विकास की उच्चतम सीमा को भोग चुके हैं। ये देश इस संकट की भयावहता के बावजूद कार्बन उत्सर्जन में कटौती के लिए तैयार भी नहीं हैं। उधर भारत, जिसने विकसित देश बनने के लिए कमर कस रखी है, ने स्वेच्छा से क़ार्बन उत्सर्जन में कटौती का निर्णय लिया है, जबकि भारत में कार्बन उत्सर्जन विकसित देशों की तुलना में कम है।

भारत ने हाल के वर्षों में ऊंची विकास दर अर्जित करके और वैश्विक मंदी का कुशल मौद्रिक उपायों से प्रबंधन कर विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। विश्व बैंक के अध्यक्ष ने भारत यात्रा के दौरान वैश्विक मंदी से निपटने पर भारत की प्रशंसा की है। अत: भारत से निकट भविष्य में विकसित देश होने की आशा की जाती है, किंतु विकसित देश भारत पर क़ार्बन उत्सर्जन में कटौती करने के लिए दबाव डाल रहे हैं। भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों पर भी ये देश दखल देने से बाज़ नहीं आ रहे हैं, जबकि भारत का परमाणु कार्यक्रम विस्तार असैन्य गतिविधियों से संबंधित है और कार्बन उत्सर्जन अपेक्षाकृत कम है।

जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर भारत को चाहिए कि वह अन्य विकासशील देशों को साथ लेकर विकसित देशों पर क़ार्बन उत्सर्जन कटौती के लिए दबाव डाले। विकसित देशों द्वारा क़ार्बन उत्सर्जन कटौती की घोषणा और आश्वासनों से काम नहीं चलने वाला। क़ार्बन उत्सर्जन कटौती को अमल में लाना आज सबसे बड़ी ज़रूरत है। भारत का ध्यान सबसे पहले तीव्र विकास के बल पर विकसित देश का स्तर पाने पर केंद्रित होना चाहिए क्योंकि भारत विकसित अवस्था को प्राप्त करके ही सामाजिक समस्याओं से निज़ात पा सकता है। आज जिस गति से भारत विकास पथ पर दौड़ रहा है उससे भारत की बड़ी आर्थिक ताक़त बनने की उम्मीद है, किंतु भारत को आर्थिक विकास पथ पर बढ़ते समय विकसित देशों की आर्थिक व्यूह रचनाओं की नकल नहीं करनी चाहिए। भारत की आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियां विकसित देशों से अलग हैं। एक ओर वैश्विक मंदी के कारण विकसित देशों की अर्थव्यवस्था धराशायी हो गई है वहीं भारत इस माहौल में भी 7.9 प्रतिशत की दर से विकास कर रहा है। यह भारत की आंतरिक आर्थिक मज़बूती से ही संभव हुआ है। जलवायु परिवर्तन के मसले पर भारत को विकसित देशों के कटु अनुभवों से सीख लेनी होगी। भारत को आर्थिक विकास के पथ पर बढ़ते हुए जलवायु परिवर्तन पर सचेत रहने की आवश्यकता है। आर्थिक विकास की व्यूहरचना इस प्रकार बने कि भारत विकसित अवस्था को भी प्राप्त कर ले और क़ार्बन उत्सर्जन भी नियंत्रण में रहे। प्राकृतिक संसाधनों की क़ीमत पर आर्थिक विकास न हो। भारतीय अतीत से प्रकृति की महत्ता से परिचित हैं। विकसित देशों की विकास व्यूहरचना आर्थिक विकास के लिए प्रकृति के विनाश पर केंद्रित रही है। ऐसी स्थिति में विकसित देशों से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आशा नहीं है। उल्टा विकसित देशों ने विकासशील देशों के संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया है। ऐसे में भारत सरीखे विकासशील देशों पर प्रकृति को बचाने का दायित्व अधिक है। भारतीय संस्कृति के लोगों का प्रकृति प्रेम, जलवायु परिवर्तन को रोकने में मददगार सिद्ध होगा।

कार्बन उत्सर्जन कटौती की पहल

इधर भारतीय अर्थव्यवस्था का कृषि क्षेत्र से उद्योग और सेवा क्षेत्र की ओर बढ़ने के कारण कार्बन उत्सर्जन भी बढ़ गया है। भारत में अधिकतर ऊर्जा स्रोत परंपरागत हैं। भारत के कुल कार्बन उत्सर्जन में 60 प्रतिशत भाग कोयला आधारित बिज़लीघरों का है। भारत कार्बन उत्सर्जन के भयावह ख़तरों से वाकिफ़ है इसी कारण यह कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए सदैव प्रयत्नशील है। भारत ने वर्ष 1990 से 2005 के बीच कार्बन उत्सर्जन में 17 प्रतिशत की कमी की है। भारत ने कोपेनहेगन सम्मेलन से पहले अगले 11 वर्षों में (2009-2020) 20 से 25 प्रतिशत कटौती की स्वैच्छिक घोषणा भी की है। केंद्र सरकार ने इसके लिए दिसंबर 2011 तक वाहनों के लिए अनिवार्य ईंधन मानक, पर्यावरण अनुकूल इमारतें, ऊर्जा संरक्षण कानून में बदलाव, वन क्षेत्र वृद्धि, बिज़ली संयंत्रों में स्वच्छ कोयला, 5-सूत्री कार्यक्रम भी तैयार किया है। भारत गैर-परंपरागत ऊर्जा उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रयत्नशील है। भारत ने कुछ विकसित देशों के साथ परमाणु समझौते किए हैं। भारतीयों की जागरुकता के कारण ही आज प्रतिव्यक्ति और प्रतिहेक्टेयर क़ार्बन उत्सर्जन का स्तर अन्य विकसित देशों की तुलना में कम है।

भारत में कार्बन उत्सर्जन का वर्तमान स्तर इस बात का द्योतक है कि भारत ने आर्थिक विकास के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन का भी ध्यान रखा है। अत: भारत को जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर विकसित देशों के दबाव में आने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विश्व में बढ़ते जलवायु परिवर्तन के लिए विकसित देश उत्तरदायी हैं। भारत को इस दिशा में अन्य विकासशील देशों को साथ लेकर विकसित देशों पर कार्बन उत्सर्जन में कटौती के लिए दबाव डालना चाहिए।

निकट भविष्य में भारत में विकास की गति के बढ़ने से क़ार्बन उत्सर्जन में वृद्धि संभव है। भारत को जलवायु परिवर्तन के किसी समझौते पर हस्ताक्षर करने से पूर्व बहुत सज़ग रहने की आवश्यकता है क्योंकि कार्बन उत्सर्जन में बड़ी कटौती का निर्णय भारत के विकसित होने के मार्ग में बाधक बन सकता है।

भारत पर ख़तरा

अब तक के अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि जलवायु परिवर्तन के लिए विकसित देश बहुत हद तक जिम्मेदार हैं। कार्बन उत्सर्जन से हिमालय कांप गया है। इससे गंगा के विलुप्त होने का ख़तरा पैदा हो गया है। समुद्री जलस्तर के बढ़ने से दक्षिण भारत के महत्वपूर्ण भू-भागों के डूबने की संभावनाएं प्रकट की जाने लगी हैं। भारत में हिमालय, गंगा और कृषि की बड़ी महत्ता है और ये सभी क़ार्बन उत्सर्जन से अधिक प्रभावित हैं। अत: भारत को क़ार्बन उत्सर्जन के मामले में बहुत सजग हो जाना चाहिए।

भारत में इस बात को लेकर चिंता बढ़ने लगी है कि हाल के वर्षों में यहां विकास दर तेज़ी से बढ़ी है और यह विकास कृषि के स्थान पर उद्योग और सेवा क्षेत्र के बल पर हुआ है। अब अर्थव्यवस्था में उद्योगों की भूमिका के बढ़ने से कार्बन उत्सर्जन बढ़ने लगा है। इन सबके बीच भारत के लिए संतोष की बात यह है कि यहां विकास सेवा क्षेत्र पर आधारित है। सेवा क्षेत्र में क़ार्बन उत्सर्जन अपेक्षाकृत कम होती है। इसी कारण विकसित देशों और अन्य उभरती बड़ी अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में भारत में प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन कम है। ❑

(लेखक आर्थिक प्रशासन तथा वित्तीय प्रबंध विभाग में व्याख्याता हैं।

ई-मेल : opsomdeep@yahoo.com)

कृषि क्रियाओं में सुधार : वैश्विक तपन में उतार

● चन्द्रभानु

तेज़ी से बढ़ रही वैश्विक तपन (ग्लोबल वार्मिंग) की समस्या एवं इसके कारण दिन-प्रतिदिन गहराता जलवायु संकट आज संपूर्ण विश्व एवं मानवता के समक्ष एक ऐसी चुनौती बनकर खड़ा है जिसे न तो नकारा जा सकता है और न ही मूकदर्शक बनकर देखा जा सकता है। पिछले सौ वर्षों में पृथ्वी के निकट सतह का तापमान लगभग 1° सेंटीग्रेड बढ़ा है और 21वीं सदी के अंत तक इसमें विभिन्न अनुमानों के अनुसार 1.1 से 6.4° सेंटीग्रेड तक वृद्धि की संभावना है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण संभावित भयंकर त्रासदी का निर्णायक बिंदु बहुत क़रीब आ चुका है और यदि इससे निजात के उपायों को तुरंत कार्यान्वित नहीं किया गया तो हम विनाश के ऐसे समुद्र में पहुंच जाएंगे जिसका कोई किनारा नहीं होगा। वैश्विक तपन का मुख्य कारण मनुष्य की विस्फोटक जनसंख्या और उसके अनियंत्रित, तथाकथित विकास की बढ़ती ऊर्जा ज़रूरतों को पूरा करने हेतु जलाए जाने वाले जीवाश्म ईंधन (पेट्रोलियम, कोयला इत्यादि) से निकलने वाली कार्बन डाई-ऑक्साइड व अन्य ग्रीन हाऊस गैसें (मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड एवं क्लोरोफ्लोरोकार्बन इत्यादि) हैं। समय रहते यदि इन ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन कम नहीं किया गया तो निकट भविष्य में हमें गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

पृथ्वी के वातावरण (ट्रोपोस्फियर) में ग्रीन हाऊस गैसों, जैसे कार्बन डाई-ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन, मिथेन एवं नाइट्रस ऑक्साइड की सांद्रता आज बहुत उच्च स्तर पर पहुंच चुकी है जिससे धरातल से परावर्तित होने वाली ऊष्मा (इंफ्रा रेड किरणें) इन गैसों के कारण वातावरण में ही फंस जाती है और संपूर्ण विश्व का तापमान बढ़ा देती है। उपर्युक्त ग्रीन हाऊस गैसों में कार्बन डाईऑक्साइड एवं क्लोरोफ्लोरो कार्बन, ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार हैं तथा इनके अत्यधिक उत्सर्जन के लिए हमारा मानव समाज ही उत्तरदायी है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन का उत्सर्जन मुख्य रूप से प्रशीतन उद्योगों (रेफ्रिजरेटर इत्यादि) के माध्यम से होता है। कार्बन डाई-ऑक्साइड के अत्यधिक उत्सर्जन के लिए जीवाश्म ईंधन (पेट्रोलियम, कोयला इत्यादि) से चलने वाले हमारे ऊर्जा संयंत्र और विशाल ऑटोमोबाइल क्षेत्र अधिक जिम्मेदार हैं।

अनियंत्रित विकास और पर्यावरण

मनुष्य की विस्फोटक जनसंख्या एवं उपभोक्तावादियों द्वारा प्रायोजित आधुनिक, असंयमित, अल्प परिभाषित व तथाकथित विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध व अन्यायपूर्ण दोहन ही पर्यावरण के विनाश के मुख्य कारण हैं। इस असंतुलित विकास में पर्यावरण संरक्षण को कोई प्राथमिकता नहीं दी गई है, जिसके कारण ही आज ज़मीन की उत्पादकता स्थिर हो गई है, जैव-विविधता, खाद्य एवं स्वास्थ्य सुरक्षा संकट में है और ग्लोबल वार्मिंग जैसी विभीषिका संपूर्ण मानवता के अस्तित्व को ही चुनौती दे रही है।

भारत जैसे अत्यधिक जनसंख्या वाले देशों के लिए तो यह समस्या और भी जटिल है। आज हमें अपनी विस्फोटक जनसंख्या के भरण-पोषण, विशाल ऊर्जा ख़र्च व संकट एवं पर्यावरण सुरक्षा के बीच सामंजस्य बिठाना लगभग असंभव प्रतीत हो रहा है और हमारा व हमारे पर्यावरण दोनों का भविष्य संकटग्रस्त प्रतीत हो रहा है। अत: आज का अनियंत्रित विकास ही हमारे व हमारे पर्यावरण दोनों के लिए वर्तमान एवं भविष्य की सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। ग्लोबल वार्मिंग जैसी भीषण समस्याओं से बचने हेतु सुझाए गए उपाय आज भी सिर्फ चर्चा का विषय अधिक हैं और उन्हें लागू करने में हमारा तथाकथित विकास ही प्रमुख रूप से आड़े आ रहा है। यही कारण है कि विश्व के अधिकतर देश इन सुझावों के प्रति ज्यादा गंभीर नहीं दिख रहे हैं।

वैश्विक तपन और भारतीय कृषि

वैश्विक तपन के कारण भारत जैसे अत्यधिक जनसंख्या वाले देशों पर बहुत दूरगामी प्रभाव पड़ने की संभावना है। हिमालय के हिमखंडों के पिघलने और उपलब्ध जल के ज्यादा वाष्पोत्सर्जन के कारण उत्तर भारत में पानी की भारी कमी हो सकती है। दक्षिणी प्रांतों के अधिकतर क्षेत्रों में तो पहले से ही सिंचाई जल की उपलब्धता कम है और ग्लोबल वार्मिंग के कारण इसके और कम होने की संभावना है। इस प्रकार भारत के कृषि उत्पादन में भारी कमी आने से हमारी खाद्य सुरक्षा पर संकट आ सकता है। तापमान बढ़ने और ठंड के महीनों में कमी होने से गेहूं (जोकि भारत की दूसरी सबसे ज्यादा उगाई जाने वाली फ़सल है) के उत्पादन में भारी गिरावट होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। दूसरी तरफ अचानक बाढ़, सूखा व सिंचाई जल की कमी

से धन के उत्पादन पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। अत: हमारे देश में ग्लोबल वार्मिंग से निपटने हेतु व्यापक स्तर पर तैयारी अभी से शुरू करने की नितांत आवश्यकता है।

कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन एवं कृषि

मनुष्य की पहली आवश्यकता भोजन है तथा इसके उत्पादन में प्रयुक्त विभिन्न कृषि क्रियाओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अत्यधिक ऊर्जा का उपयोग होता है। फलस्वरूप कार्बन डाई-ऑक्साइड का उत्सर्जन भी अधिक होता है। विलियम रूडिमैन के अनुसार, ग्लोबल वार्मिंग की समस्या के बीज तो 8,000 वर्ष पहले ही बोए जा चुके थे जब कृषि भूमि के लिए जंगलों की अंधाधुंध कटाई व्यापक स्तर पर आरंभ की गई थी। मौसम परिवर्तन पर शोध कर रही अंतरराष्ट्रीय संस्था आईपीसीसी (2007) के अनुसार सन 2004 में कुल ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कृषि का अनुमानित योगदान 13.5 प्रतिशत रहा है। अन्य अनुमानों के अनुसार यह मात्रा लगभग 20 प्रतिशत तक हो सकती है। ग्लोबल वार्मिंग के वर्तमान संकट को देखते हुए हमें कृषि, वानिकी व उद्यानिकी के क्षेत्रों में व्यापक सुधार के साथ-साथ जीवन के हर स्तर पर न्यूनतम आवश्यक ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देना होगा जिससे कुल कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन में कमी की जा सके।

मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन एवं कृषि

कार्बन डाई-ऑक्साइड की तुलना में मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड और क्लोरोफ्लोरों कार्बन की ग्लोबल वार्मिंग क्षमता क्रमश: 25 गुना, 300 गुना और 10,000 गुना अधिक होती है। अत: कार्बन डाई-ऑक्साइड के साथ-साथ आज हमें मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड और क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उत्सर्जन को कम करने पर भी विशेष ध्यान देना होगा। मिथेन उत्सर्जन प्रमुख रूप से जुगाली करने वाले पशुओं के पेट से, रोपण पद्धति से उगाए जाने वाले धान के खेतों व दलदली क्षेत्रों से होता है। नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन मुख्य रूप से फ़सलों में प्रयोग किए गए कृत्रिम नत्रजन उर्वरकों के कारण होता है। इस प्रकार हमारे देश में कुल ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कृषि, पशुपालन वह अन्य संबंधित क्रियाओं का योगदान लगभग 29 प्रतिशत है। इसके अलावा कुल मिथेन व कुल नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन का क्रमश: 65 प्रतिशत और 90 प्रतिशत भाग भी इन्हीं क्षेत्रों से होता है। कृषि, वानिकी व पशुपालन के क्षेत्रों में उचित प्रबंधन के द्वारा हम इन ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को काफी हद तक कम करके ग्लोबल वार्मिंग की गति को धीमा कर सकते हैं।

उत्पादन की दृष्टि से धान विश्व का दूसरा प्रमुख खाद्यान्न है। विश्व की सबसे ज्यादा जनसंख्या चावल पर ही निर्भर है। चावल अत्यधिक पानी चाहने वाली फ़सल है और अभी तक इसके उत्पादन का ज्यादा भाग 'रोपण पद्धति' से पैदा होता है। इस पद्धति में धान के खेत में अधिक समय तक पानी भरा रहता है और ऐसे में जलमग्न मिट्टी के अंदर कार्बनिक यौगिकों के विघटन से बनने वाली मिथेन गैस की भारी मात्रा धान के पौधों के माध्यम से वातावरण में उत्सर्जित होती रहती है। वातावरण में उत्सर्जित होने वाली कुल मिथेन का ज्यादातर भाग 'रोपण पद्धति' वाले धान के खेतों व दलदली क्षेत्रों से ही निकलती है।

वैश्विक तपन को रोकने हेतु कृषि क्रियाओं में सुधार

ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याओं से बचने का मुख्य उपाय हमारी जनसंख्या वृद्धि में कमी, उसके द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का संयमित उपयोग व पर्यावरण के प्रति मित्रवत विकास में निहित है। वैश्विक तपन को रोकने हेतु कृषि, वानिकी एवं उद्यानिकी पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि अभी तक सिर्फ यही क्षेत्र ऐसे हैं जिनके द्वारा हम वातावरण में उपस्थित कार्बन डाई-ऑक्साइड की बड़ी मात्रा को सीधे-सीधे अवशोषित करके, वहां पर इसकी सांद्रता काफी हद तक कम कर सकते हैं और कुल ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन में भी कमी कर सकते हैं। कृषि की विभिन्न तकनीकों, ऊर्जा उपयोग संबंधी उनके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं एवं न्यूनतम ऊर्जा उपयोग एवं कुल ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम करने हेतु उनके उचित समायोजन का वर्णन नीचे दिया जा रहा है:

- **संरक्षण कृषि (कंजर्वेशन एग्रीकल्चर) व मृदा कार्बन स्तर में वृद्धि**

पर्यावरण की कार्बन डाई-ऑक्साइड कम करने हेतु आज इसकी अधिकाधिक मात्रा को मृदा कार्बन के रूप में संचित करने की आवश्यकता है। मृदा कार्बन का फ़सलोत्पादन में तो महत्व है ही, साथ-साथ पर्यावरण की दृष्टि से इसका महत्व 40 से 70 गुना अधिक होता है। परंपरागत तरीक़ों से होने वाली भू-परिष्करण में नियमित रूप से अधिकाधिक मशीनों और ऊर्जा का उपयोग होता है और यह माना जाता है कि मृदा की तैयारी जितनी ज्यादा होगी, उत्पादन उतना ही अधिक होगा। परंतु अधिक कर्षण क्रियाओं के प्रयोग से मृदा में उपस्थित कार्बन की अधिकाधिक मात्रा कार्बन डाई-ऑक्साइड (CO_2) के रूप में मुक्त होकर वातावरण में इसकी मात्रा बढ़ा देती है। भू-परिष्करण क्रियाओं में अप्रत्यक्ष रूप से ख़र्च होने वाली ऊर्जा में कृषि यंत्रों के निर्माण एवं रखरखाव आदि शामिल हैं। एक अध्ययन के अनुसार, कृषि यंत्रों के निर्माण एवं रखरखाव पर ख़र्च होने वाली ऊर्जा, एक औसत यंत्रीकृत प्रति एकड़ फार्म पर ख़र्च होने वाली कुल ऊर्जा की आधी होती है। इसके अलावा अत्यधिक भू-परिष्करण मृदा कटाव को भी बढ़ावा देता है, जिसके प्रबंधन हेतु अतिरिक्त ऊर्जा ख़र्च होती है। संरक्षण कृषि के अंतर्गत हम कृषि में उपयोग किए जाने वाले संसाधनों (फ़सल उत्पादन व सुरक्षा हेतु) के न्यूनतम उपयोग के द्वारा ही अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार कृषि क्रियाओं पर कम संसाधन ख़र्च व ऊर्जा प्रयोग होने से पर्यावरण को होने वाले नुक़सान में कमी आती है।

न्यूनतम भू-परिष्करण और शून्य कर्षण के द्वारा हम फ़सलोत्पादन पर होने वाले ख़र्च को कम कर सकते हैं। साथ-ही-साथ कम पेट्रोलियम जलने से कार्बन डाई-ऑक्साइड का उत्सर्जन भी कम होता है। शून्य कर्षण के उपरांत बोई गई फ़सलों में मृदा नमी का संरक्षण अधिक होता है। सिंचाई के लिए पानी की मात्रा अपेक्षाकृत कम लगती है और मृदा क्षरण भी कम होता है। इसके अलावा कई तरह के खरपतवारों, जैसे गेहूं के रोग फलेरिस माइनर के प्रकोप में कमी आती है। शून्य कर्षण अपनाने से मृदा कार्बन की मात्रा में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार संरक्षण क्रियायें सही मायने में ग्रीनहाउस प्रभाव कम करने में उपयोगी सिद्ध होंगी। आज गेहूं व धान के अलावा चना, मटर, मसूर, सरसों व अलसी जैसी फ़सलों का उचित उत्पादन हम शून्य कर्षण के माध्यम से सफलतापूर्वक ले सकते हैं। शाकनाशी रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण की उन्नत तकनीकों ने खेती की न्यूनतम जुताई के प्रयोग को और आसान बना दिया है। धान व गेहूं की कटाई के उपरांत खेत में पड़े हुए जैव ढेर पर भी आज उन्नत तरीक़े वाली नगण्य जुताई कर बुवाई करने वाली मशीनें अच्छी तरह चल सकती हैं और बुआई का कार्य बिना किसी

बाधा के संपन्न कर सकती हैं। इस प्रकार हम इन जैव ढेरों को जलाए बिना ही अगली फ़सल ले सकते हैं और मृदा कार्बन की मात्रा में वृद्धि करके वातावरण में उत्सर्जित होने वाली ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा को कम कर सकते हैं।

न्यूनतम जुताई विधि एवं परंपरागत जुताई विधि का चक्रीय (एक के बाद एक) उपयोग करके हम कुल ख़र्च होने वाली ऊर्जा में बचत करके वातावरण को होने वाले नुक़सान से बचा सकते हैं। इसके अलावा हमें फ़सल कीटों, रोगकारकों व खरपतवारों के प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण के तरीक़ों को भी अपनाना होगा ताकि रसायनों का प्रयोग कम-से-कम करना पड़े और कृषि जैव-विविधता भी उचित स्तर तक बनी रहे।

बहु-सूक्ष्मजीवी कल्चर (पॉलीमाइक्रोबियल-कल्चर) के उपयोग (जिसमें मृदा उत्पादकता व पोषक तत्वों की उलपलब्धता बढ़ाने वाले जैसे राइजोबियम, माइकोराइजा, पादप वृद्धि प्रवर्तक सूक्ष्म जीवों इत्यादि और फ़सल शत्रु नियंत्रक जैसे कीटनाशी, कवकनाशी, खरपतवारनाशी, सूत्रकृमिनाशी सूक्ष्मजीवों) को बढ़ावा देकर संरक्षण कृषि को और अधिक उत्पादक व टिकाऊ बनाया जा सकता है।

● सिंचाई जल का समुचित उपयोग एवं संरक्षण

सिंचाई जल का उचित समय पर व उचित विधियों द्वारा उपयोग करके हम इस पर ख़र्च होने वाली अनावश्यक ऊर्जा को कम कर सकते हैं। बागानों व चौड़ी लाइनों में बोई गई फ़सलों में ड्रिप सिंचाई पद्धति को अपनाकर उपलब्ध सिंचाई जल का समुचित उपयोग किया जा सकता है। लेजर लेवलर के प्रयोग से मृदा-ढाल को सुव्यवस्थित करके सिंचाई जल का समुचित उपयोग व संरक्षण किया जा सकता है।

● रासायनिक कृषि पर नियंत्रण व उचित तकनीकों का उपयोग

हरित क्रांति के पश्चात लगभग पूरे विश्व में कृषि का रसायनीकरण हो गया है, जिससे आज मृदा उत्पादकता में कमी व स्थिरता के साथ-साथ जैवनाशी प्रतिरोधी कीटों, रोगकारकों व खरपतवारों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। इनका मुख्य कारण मृदा उत्पादकता व फ़सल शत्रुओं को नियंत्रित करने वाली पारिस्थितिकीय व्यवस्था का नष्ट होना है। अत: आज विश्वस्तर पर कृषि में रसायनों के न्यायोचित उपयोग के लिए व्यापक जनजागरुकता लाने की नितांत आवश्यकता है। आज हमें जैविक उर्वरकों व मृदा उत्पादकता को बढ़ाने वाले प्राकृतिक संसाधनों का व्यापक स्तर पर उपयोग करना होगा। फ़सलों की कीट व रोगरोधी किस्मों व खरपतवारों को दबाने वाली प्रजातियों के विकास व उपयोग पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके अलावा फ़सल कीटों, रोगकारकों व खरपतवारों के जैविक नियंत्रण को व्यापक रूप दिया जाना चाहिए। पूर्व में शाकनाशियों का प्रयोग ज्यादा मात्रा में तथा फ़सलों की बुवाई के समय या फिर उगने से पूर्व किया जाता था। इनसे आवश्यक नियंत्रण न मिलने के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण भी ज्यादा होता था। परंतु वर्तमान समय में विकसित 'स्मार्ट शाकनाशी' जिनका बहुत ही कम मात्रा में (4-100 ग्राम प्रति हेक्टेयर) उपयोग होता है, इन समस्याओं को कम करने में प्रभावी पाए गए हैं। इनके अकेले या मिश्रित प्रयोग से कई तरह के खरपतवारों का नियंत्रण होता है तथा पर्यावरण प्रदूषण भी कम होता है। क्लोडिनाफाप, फेनाग्जाप्राप, क्लोरीम्यूरॉन, कारफेंट्राजोन, मेटसल्फ्यूरान, अलमिक्स आदि इन्हीं शाकनाशियों के प्रकार हैं। तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय में आजकल नैनोहर्बीसाइड्स (अतिसूक्ष्म शाकनाशी) के विकास पर परियोजना चल रही है। आशा है कि भविष्य में ये नैनोहर्बीसाइड्स अति सूक्ष्म मात्रा में खरपतवारों के सटीक नियंत्रण हेतु प्रयोग में आने लगेंगे।

उचित बीज शोधन को अपनाकर हम कई फ़सल व्याधियों व कीड़ों का नियंत्रण कम रसायनों के उपयोग से ही कर सकते हैं और वातावरण और फ़सलोत्पादन को होने वाले नुक़सान कम कर सकते हैं।

● कृषि वानिकी व उद्यानिकी को बढ़ावा

उचित कृषि वानिकी व उद्यानिकी पद्धतियों से खेती करके हम वांछित फ़सलोत्पादन के अतिरिक्त वातावरण से कार्बन डाई-ऑक्साइड की भारी मात्रा को वन व फल वृक्षों के माध्यम से संचित कर सकते है। इसके अतरिक्त उपयोगी फर्नीचर व निर्माण कार्य हेतु लकड़ी की उपलब्धता होने से जंगलों के ऊपर उपयोगी लकड़ियों के लिए दबाव कम पड़ेगा। फल वृक्षों के अधिकाधिक रोपण से हमें खाद्य फलों के अलावा ग्रीनहाउस प्रभाव को कम करने में भी मदद मिलेगी। इसके अलावा क्षेत्रीय मौसम को ठंडा रखने, मृदा क्षरण रोकने व प्रदूषण कम करने में भी मदद मिलेगी। लवणीय व उसर भूमि पर उसर-सहनशील फल व वन वृक्षों के रोपण द्वारा इन समस्याग्रस्त क्षेत्रों की कृषि उत्पादकता को उच्च स्तर तक बढ़ाया जा सकता है।

● खरपतवारों के प्रबंधन पर विशेष ध्यान

फ़सलोत्पादन में खरपतवार ऐसे लुटेरों की तरह हैं, जो फ़सलों के लिए प्रयोग किए गए पोषक तत्वों व पानी आदि चुरा लेते हैं और सौर प्रकाश व स्थान के लिए भी प्रतिस्पर्धा करते हैं। इसके अलावा खरपतवार फ़सलों की कई बीमारियों और कीड़ों को फैलाने के लिए भी जिम्मेदार होते हैं। फलस्वरूप हमारी फ़सलें कमज़ोर हो जाती हैं और हमारे द्वारा प्रयोग किए गए संसाधनों, (पोषक तत्व, दवाओं, पानी इत्यादि) व उन पर ख़र्च होने वाली ऊर्जा का भारी नुक़सान होता है। खरपतवार नियंत्रण कृषि की बहुत महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं में से है और इसके फलस्वरूप भी अत्यधिक कार्बन डाई-ऑक्साइड प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वातावरण में उत्सर्जित होती रहती है। खरपतवार नियंत्रण की विभिन्न विधियों का उचित समायोजन तथा आवश्यकतानुरूप प्रभावी प्रयोग करके हम ऊर्जा की बचत कर वातावरण में उत्सर्जित होने वाली कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा को कम कर सकते हैं।

● मृदा सौर्यीकरण

मूल्यवान फ़सलों एवं फ़सल नर्सरी में खरपतवार व मृदाजनित फ़सल रोगों के नियंत्रण के लिए यह एक प्रभावी एवं पर्यावरण के लिए मित्रवत विधि है। इस विधि में गर्मियों के दिनों

मृदा बिछावन (मल्चिंग)

नगन्य जुताई कर बुवाई करने वाली मशीनें

(अप्रैल-मई-जून) में उचित मृदा नमी युक्त तैयार खेत को पारदर्शी पालीइथाइलीन शीट से ढककर चारों तरफ से सील कर देते हैं। फलस्वरूप अधिकाधिक सौर उर्जा (उष्मा) मिट्टी के अंदर प्रवेश करके उसका तापमान बढ़ा देती है। जबकि रात के समय यही पालीइथाइलीन शीट मिट्टी की उष्मा को बाहर निकलने से रोकती भी है। इस प्रकार मृदा का तापमान 50° सेंट्रीग्रेड या इससे भी अधिक पहुंच जाता है। लंबे समय तक उच्च तापमान बने रहने से मृदा में पाए जाने वाली कई प्रजातियों के खरपतवारों के बीज मर जाते हैं। इसके अलावा मृदाजनित रोग फैलाने वाले कई तरह के कवक, निमेटोड तथा जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं। इससे फ़सलों की वृद्धि और विकास पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा सौर्यीकरण से कार्बन डाई-ऑक्साइड का उत्सर्जन नगण्य होता है और पर्यावरण को कोई विशेष नुक़सान नहीं पहुंचता। अत: एकीकृत खरपतवार, बीमारी व कीड़ों के प्रबंधन में इस विधि को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए।

● शष्यक्रियात्मक विधियों द्वारा फ़सलोत्पादन में वृद्धि तथा खरपतवार, रोग व कीट नियंत्रण

कृषि में शामिल बहुत-सी शष्य क्रियायें फ़सलोत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ खरपतवारों, फसल रोग व कीटों के नियंत्रण में भी काफी सहयोग करती हैं, भले ही वह प्रत्यक्ष रूप से हमें दिखाई नहीं पड़ता है। कुछ प्रमुख शष्य क्रियायें निम्न हैं:

फ़सल चक्र

किसी एक खेत में अलग-अलग वर्षों में अलग-अलग फसलों को हेर-फेर करके इस प्रकार उगाना जिससे मृदा की उर्वरता बनी रहे तथा किसी एक तरह के खरपतवारों, बीमारी व कीड़े की निरंतर बढ़ोतरी न हो पाए। इसके अलावा मृदा कार्बन की मात्रा बढ़ाने में भी फ़सल चक्र सहयोगी होता है। मृदा कार्बन की मात्रा बढ़ाने में अरहर, कपास, सेन्ना जैसी गहरी जड़ वाली फ़सलों के साथ फसल चक्र अधिक प्रभावी होगा। फसल चक्र में जैविक-नत्रजन-स्थिरीकरण करने वाली दलहनी फसलों के समावेश से रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग कम करना पड़ेगा और मृदा कार्बन स्तर में भी वृद्धि होगी।

अंतर्वर्ती फ़सलें

ऐसी फसलें जोकि पंक्तियों में बोई जाती हैं तथा उनकी पंक्ति से पंक्ति की अधिक दूरी में अंतर्वर्ती फसलों को उगाकर रिक्त पड़े स्थान पर खरपतवारों की वृद्धि को रोका जा सकता है। उदाहरणस्वरूप मक्के की फ़सल के साथ लोबिया लगाने से मक्के में खरपतवारों की वृद्धि को रोकने के साथ-साथ कुल उत्पादकता में भी वृद्धि होती है। अरहर की पंक्तियों में ज्वार उगाने से अरहर में उकठा रोग कम लगता है। इसके अलावा कुल उत्पादकता में वृद्धि होने से खाद्यान्न उत्पादन हेतु अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता भी कम होती है।

बुआई तिथि में फेरबदल व पौध सघनता

कुछ फ़सलों में जल्दी से बुआई करने और कुछ में देर से करने पर भी खरपतवारों, फ़सल रोगों व कीटों के नियंत्रण में भी काफी सहयोग मिलता है। कुछ फ़सलों जैसे गेहूं की फसल को एक सीमा के अंदर घना बोने से खरपतवारों की वृद्धि के लिए कम स्थान मिलता है। एक अध्ययन के अनुसार कतार से कतार की दूरी कम करके, फ़सल की सघनता बढ़ाकर बुआई करने से खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के साथ-साथ उपज में 15 प्रतिशत तक की वृद्धि पाई गई है और यहां पर शाकनाशियों का उपयोग भी न्यूनतम मात्रा में करना पड़ता है।

मृदा बिछावन (मल्चिंग) व फ़सलें

वर्तमान में वातावरण की कार्बन डाई-ऑक्साइड को कम करने हेतु मृदा में कार्बन की अधिक-से-अधिक मात्रा को संरक्षित करने पर ज्यादा ज़ोर दिया जा रहा है। कतार में बोई गई फ़सलों में मृदा बिछावन (जीवित फ़सलें या मृत जैव ढेर) के समुचित प्रयोग से खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ फ़सलों की मृदा जनित बीमारियों में कमी, मृदा उत्पादकता में वृद्धि तथा वातावरण में कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा को कम करने में काफी सहयोग मिलता है। मृदा बिछावन के लिए हरी खाद, रूंधने वाली या स्मूदर फ़सलें, जीवित बिछावन (कुछ अंतर्वर्ती फ़सलें जैसे लोबिया, मूंग इत्यादि), विभिन्न फ़सलों के अवशिष्ट जैव ढेर (भूसा, पुवाल इत्यादि) व पेपर आदि का प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त शष्य क्रियाओं में हमें अधिक अतिरिक्त ऊर्जा ख़र्च किए बिना ही अधिक फ़सलोत्पादन व कई तरह के खरपतवारों, फ़सल रोग व कीटों का नियंत्रण प्राप्त होता है तथा कार्बन की अधिक-से-अधिक मात्रा मृदा में संरक्षित करने में मदद मिलती है।

● उचित पोषक तत्व प्रबंधन व जल निकास

फ़सलों में पोषक तत्वों का उचित प्रबंधन करना होगा जिससे उपयोग किए गए नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश आदि पौधों को अधिकाधिक मात्रा में उपलब्ध हो सकें और नाइट्रस ऑक्साइड के रूप में उत्सर्जन कम-से-कम हो सके। उचित जल निकास प्रबंधन की व्यवस्था करके मृदा से मिथेन और नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन कम किया जा सकता है।

● विदेशी खरपतवारों का नियंत्रण

जैविक नियंत्रण, खरपतवार नियंत्रण का एक प्रकृति प्रदत्त तरीक़ा है जिससे पर्यावरण प्रदूषण के साथ-साथ ग्लोबल वार्मिंग को रोकने में भी मदद मिलेगी। इस विधि में किसी खरपतवार के कुछ विशिष्ट प्राकृतिक शत्रुओं (जैसे परजीवी कीड़े, रोगकारक कवक, जीवाणु आदि) के उपयोग द्वारा इसे नष्ट किया जाता है। विश्व स्तर पर आक्रामक विदेशी खरपतवारों के नियंत्रण हेतु, इस विधि का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है। भारत में भी गाजरघास (पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस) के नियंत्रण हेतु मेक्सिको से आयातित जाइगोग्रामा बाईकोलोराटा नामक भृंग कीट का वृहद स्तर पर उपयोग हो रहा है। इसके अलावा मिकानिया माइक्रेंथा नामक खरपतवार, जोकि भारत के दक्षिण-पश्चिम घाट एवं असम के जंगलों में काफी आक्रामक हो चुका है, के नियंत्रण हेतु पक्सीनिया स्पेगैजिनी नामक गेरुआ रोग फैलाने वाले कवक को हाल के वर्षों में छोड़ा गया है। अन्य विदेशी आक्रामक खरपतवारों जैसे लैंटाना

अंतर्वर्ती फ़सलों की खेती को बढ़ावा

भूसा-पुआल जलाने पर पूर्ण प्रतिबंध ज़रूरी

केमरा, क्रोमोलिना ओडोरेटा आदि के जैविक नियंत्रण हेतु प्रयास जारी हैं। कुछ प्रमुख विदेशी खरपतवारों जैसेकि गाजरघास, लैंटाना केमरा एवं जलकुंभी (आईकार्निया क्रेसिप्स) आज भारत के अधिकांश भू-भाग पर ख़तरनाक स्तर तक फैलकर यहां की उत्पादकता को कम कर रहे हैं और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए भी ख़तरा बन गए हैं। यदि इन खरपतवारों के नियंत्रण हेतु हम यांत्रिक व रासायनिक विधियों का प्रयोग करते हैं तो करोड़ों रुपये ख़र्च के साथ-साथ कार्बन डाई-ऑक्साइड के उत्सर्जन में भारी वृद्धि होगी। अत: इन आक्रामक जैव-आतंकियों के नियंत्रण हेतु अधिकाधिक मात्रा में उनके परजीवी कीड़ों व रोगकारकों को आयात करने की तत्काल आवश्यकता है।

● फ़सल शत्रुओं का नियंत्रण

आज द्रुत गति से बढ़ रहे अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक आवागमन के कारण सारा संसार एक वैश्विक गांव के रूप में सिमट गया है। इन बढ़ी हुई आवागमन गतिविधियों के कारण बहुत सारे जीवों का उनके उत्पति स्थान से निकलकर नये देशों या क्षेत्रों में पहुंचने की संभावना भी बढ़ गई है। खरपतवार, फ़सल रोगकारक व कीट इन्हीं जीवों में से कुछ प्रमुख हैं। कालांतर में इन्हीं फ़सल शत्रुओं में से कुछ अपने नये निवास स्थान या देश में कब्ज़ा जमाकर एक जैविक आतंक का रूप ले सकते हैं। उदाहरण स्वरूप गेहूं का मामा (फैलेरिस माइनर), लैंटाना केमरा, जलकुंभी (आईकार्निया क्रेसिप्स) आदि विदेशी उत्पत्ति वाले खरपतवारों ने आज हमारे देश में भारी आतंक मचा रखा है और इनका संपूर्ण नियंत्रण असंभव-सा हो गया है। गेहूं के लिए 'यूजी 99' नामक नये काला गेरुआ (किट्ट) कवक का हमारे देश में आने का ख़तरा बना हुआ है। अत: आज हमें अपने प्रमुख व्यापारिक केंद्रों पर अपनी वैधानिक नियंत्रण व्यवस्था को और चुस्त-दुरुस्त करने की ज़रूरत है, जिससे कि इस तरह के अवांछित जैविक फैलाव को रोका जा सके। इसके अलावा नये संभावित रोगकारकों व फ़सल कीड़ों के विभेदों के प्रबंधन हेतु हमें पहले से ही रणनीति बनानी होगी। इस प्रकार भविष्य में इन संभावित विदेशी आक्रामक जीवों के नियंत्रण हेतु हमें अतिरिक्त ऊर्जा ख़र्च नहीं करनी पड़ेगी और हमारा पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा।

● जैव ईंधन फ़सलों की खेती को बढ़ावा

ग्रीनहाउस प्रभाव को रोकने के लिए जैव ईंधन (बायो फ्यूल) फ़सलें जैसे जटरोफा, मीठा ज्वार व मक्का इत्यादि के उपयोग की काफी संभावनाएं हैं। ये फ़सलें पहले तो वातावरण की कार्बन डाई-ऑक्साइड को संचित करके जैव ईंधन बनाने में उपयोग की जाएंगी, तत्पश्चात इन्हें अकेले या पेट्रोलियम के साथ मिश्रित रूप से जलाया जाएगा और विभिन्न ऊर्जा कार्यों के लिए उपयोग किया जाएगा। इस प्रकार वातावरण में अतिरिक्त कार्बन डाई-ऑक्साइड का उत्सर्जन नहीं होगा जबकि जीवाश्म ईंधन (पेट्रोल, कोयला इत्यादि) जलाने से मृदा के गर्भ में संचित कार्बन वातावरण में कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा को केवल बढ़ाता ही है। जैव ईंधन के लिए कुछ ऐसी फ़सलों या खरपतवारों का उपयोग ज्यादा लाभकारी होगा जो खाद, पानी व दवाओं के प्रयोग के बिना ही अनुपयोगी भूमि (बंजर भूमि, ऊसर भूमि, नदियों का कछार इत्यादि) पर आसानी से उगाए जा सकें व बार-बार उत्पादन देते रहें। इस विषय पर नये सिरे से योजना बनाने की आवश्यकता है।

● धान की कृषि पद्धति में सुधार द्वारा मिथेन उत्सर्जन में कमी

वातावरण में उत्सर्जित होने वाली कुल मिथेन का ज्यादातर भाग 'जलभराव रोपण पद्धति' वाले धान के खेतों से ही निकलती है। धान का उत्पादन यदि सीधी बुआई वाली एयरोबिक पद्धति से करें तो मिथेन का उत्सर्जन काफी कम हो जाता है। इस विधि में तैयार खेत में धान की सीधी बुआई करते हैं तथा खेत में उचित हवा व नमी बनाए रखने के लिए इतनी सिंचाई करते हैं कि मिट्टी केवल गीली बनी रहे और पानी का ठहराव न हो। परंतु इस पद्धति की एक मुख्य समस्या खरपतवारों की है जिनसे धान की फ़सल को काफी नुक़सान होता है। कम मात्रा में प्रयोग होने वाले नये जमाने के स्मार्ट शाकनाशियों पर आधारित एकीकृत खरपतवार नियंत्रण प्रणाली को अपनाकर इस समस्या से निजात पाया जा सकता है तथा एयरोबिक पद्धति से धान उत्पादन को प्रोत्साहित करके, मिथेन उत्सर्जन को काफी कम किया जा सकता है। इसके अलावा कम मिथेन उत्सर्जन करने वाली धान की प्रजातियों के विकास की संभावनाएं भी तलाशनी होंगी।

● भूसा-पुआल प्रबंधन द्वारा कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन में कमी

धान तथा गेहूं के खेतों से विशाल मात्रा में पुआल तथा भूसा पैदा होता है। इनका प्रबंधन यदि उचित तरीक़े से न किया जाए तो पर्यावरण को भारी नुक़सान होता है। आजकल कंबाइन द्वारा कटाई के पश्चात खेत में बचे हुए जैव ढेर को जलाने की परंपरा बढ़ती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप भारी मात्रा में ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन होता है। एक अध्ययन के अनुसार पंजाब में भारी मात्रा में जैव ढेर (भूसा या पुआल) जलाने से उत्तर भारत के विशाल वातावरणीय भाग पर धुंध-सा बन जाता है जो वातावरण की गर्मी में वृद्धि करता है। जैव ढेर को जलाने से भारी मात्रा में निकला हुआ धुआं मनुष्यों तथा पशुओं के स्वास्थ्य के लिए भी घातक होता है। इसके अलावा भारी मात्रा में उपलब्ध संभावित पोषक तत्वों (नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश आदि) का नुक़सान भी होता है। यह प्रचलन पर्यावरण की दृष्टि से बहुत ही घातक है और इस पर पूर्ण प्रतिबंध के साथ-साथ व्यापक जनजागरुकता लाने की भी आवश्यकता है। यदि भूसा तथा पुआल को एकत्र करके इसका उपयोग जैव खाद बनाने, मशरूम उत्पादन, बागानों व खेतों में बिछावन (मल्च आदि) में प्रयोग करें तो कुल उत्पादकता में वृद्धि होगी और पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा। उचित बिछावन (मल्चिंग) के तरीक़ों को अपनाकर खेतों तथा बागानों में खरपतवारों के प्रकोप को भी कम किया जा सकता है। जहां तक संभव हो सके, रोपण पद्धति से उगाए जाने वाले धान के खेत में उचित तरीक़े से सड़ी हुई खाद ही मिलाएं तथा बिना सड़ा हुआ जैव ढेर (भूसा, पुआल आदि) बिल्कुल न छोड़ें। इससे ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में काफी कमी आती है।

सारांश

आज की तेज़ रफ़्तार ज़िंदगी और अनियंत्रित विकास के कारण हमारा पर्यावरण एक ऐसे ख़तरनाक मोड़ पर पहुंच गया है, जिसका दुष्परिणाम या तो कई रूपों में हमें भोगना पड़ रहा है या भविष्य में संपूर्ण विश्व पर क़हर बनकर टूटने वाला है। अत: आज जीवन के हर क्षेत्र में हमें अनावश्यक ऊर्जा ख़र्च को रोककर नियंत्रित, टिकाऊ व सदाबहार विकास को आगे ले जाना है जिससे पर्यावरण के साथ-साथ हमारा भी भविष्य सुरक्षित रहे। ❑

(लेखक खरपतवार विज्ञान अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर में वैज्ञानिक हैं।

ई-मेल : chandrabhanu21@gmail.com)

जलवायु परिवर्तन : कारण और प्रभाव

● प्रांजल धर

वर्तमान समय में यह बात सामान्य ज्ञान का हिस्सा समझी जाती है कि धरती का तापमान तेज़ी से बढ़ रहा है और पृथ्वी की जलवायविक दशाओं में नकारात्मक परिवर्तन प्रारंभ हो चुके हैं। जलवायु परिवर्तन इस समय एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आया है जिससे निपटना मानवता एवं सभ्यता के लिए अनिवार्य होता जा रहा है। आज लगभग सभी बड़े अंतरराष्ट्रीय मंचों पर यह विमर्श के प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरा है, क्योंकि यह हम सबके अस्तित्व से जुड़ा मसला है। राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणविदों की चिंताएं हों या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आयोजित कोपेनहेगन सम्मेलन– ये सभी विश्व के लोगों को जागरूक बनाने की कोशिश का हिस्सा है ताकि जलवायु परिवर्तन के ख़तरे का मुक़ाबला किया जा सके। इस संदर्भ में यह जानना महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है कि जलवायु परिवर्तन की ख़तरनाक स्थिति के कारण क्या हैं और इसने किन-किन ख़तरनाक प्रभावों को जन्म दिया है।

जलवायु परिवर्तन के कारणों का संबंध हरितगृह प्रभाव और वैश्विक तपन से है। सूर्य से आने वाले विकिरण का लगभग चालीस प्रतिशत धरती के वातावरण तक पहुंचने से पहले ही अंतरिक्ष में लौट जाता है। इसके अतिरिक्त पंद्रह प्रतिशत वातावरण में अवशोषित हो जाता है तथा शेष पैंतालीस प्रतिशत विकिरण ही पृथ्वी के धरातल तक पहुंचता है। धरती की सतह तक पहुंचने के बाद यह विकिरण गर्मी (दीर्घ तरंगों) के रूप में पृथ्वी से परावर्तित होता है। वायुमंडल में उपस्थित कुछ प्रमुख गैसें लघुतरंगी सौर विकिरण को पृथ्वी के धरातल तक आने तो देती हैं लेकिन पृथ्वी से परावर्तित होने वाले दीर्घतरंगी विकिरण को बाहर नहीं जाने देतीं और इसे अवशोषित कर लेती हैं। इस वज़ह से पृथ्वी का औसत तापमान पैंतीस डिग्री सेल्सियस के लगभग बना रहता है। वास्तव में इस प्रक्रिया के अंतर्गत गैसें ऊपरी वायुमंडल में एक ऐसी परत बना लेती हैं जिसका असर पौधों को बाहरी गर्मी-सर्दी से बचाने के लिए बनाए गए ग्रीनहाउस की छत की तरह होता है। लेकिन पिछले कुछ दशकों से वायुमंडल में कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। ग्रीनहाउस गैसों में हो रही इस वृद्धि से वायुमंडल में विकिरणों के अवशोषण करने की क्षमता निरंतर बढ़ रही है। इसी वज़ह से धरती का तापमान बढ़ रहा है और जलवायु में विनाशकारी परिवर्तन मानवता की चौखट पर दस्तक दे रहा है।

जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारणों में प्रमुख कारण उत्सर्जित कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि होना है। उद्योगों की चिमनियों, फ़ैक्ट्रियों और वाहनों से निकलने वाला धुआं तथा घरों, दफ्तरों आदि में विविध उपकरणों से निकलने वाली गर्म वाष्प आदि प्रतिदिन हमारे वातावरण में पर्याप्त गर्मी छोड़ती है। औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला क़चरा प्राय: गर्म होता है जिसे नदी-नालों में बहा दिया जाता है। वातावरण में अनावश्यक ताप घोलने में सबसे आगे है– ताप बिजलीघर। यहां कोयला जलाकर विद्युत प्राप्त की जाती है जिससे बड़ी मात्रा में ताप विसर्जित होता है। ताप पानी के लगभग सभी गुणों को प्रभावित करता है। गर्म पानी में ठंडे पानी की अपेक्षा रासायनिक पदार्थ व अपशिष्ट अधिक घुलनशील हो जाते हैं। अनेक प्रदूषण नियंत्रक वैज्ञानिकों का कहना है कि नब्बे डिग्री फ़ारेनहाइट से अधिक ताप अधिकांश मछलियों को सहन नहीं होता है। आज अनेक नदियों का तापमान इस सीमा को पार कर रहा है जिससे जलीय जीवों पर ख़तरा बढ़ गया है।

पिछली एक शताब्दी में पेट्रोलियम पदार्थों एवं अन्य जीवाश्म ईंधनों के प्रयोग में गुणात्मक वृद्धि हुई है। परिवहन के साधनों में अभूतपूर्व प्रगति के चलते वाहनों से उत्सर्जित ख़तरनाक ज़हरीली गैसों की सांद्रता बढ़ी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के हालिया अनुमान के मुताबिक संसार के क़रीब आधे शहरों में कार्बन मोनो-ऑक्साइड की मात्रा हानिकारक स्तर तक पहुंच चुकी है। कुल मिलाकर पिछले छह सौ वर्षों में कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा पैंसठ प्रतिशत से भी अधिक बढ़ गई है। वर्तमान उपभोक्तावादी जीवनशैली ने भी इन ख़तरनाक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में बढ़ोतरी की है। तालिका-1 से यह स्पष्ट होता है कि विकसित देशों में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन किस विनाशकारी सीमा तक पहुंच गया है।

भारत की स्थिति ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के मामले में निश्चित ही श्रेष्ठ है, चाहे वह समग्र उत्सर्जन का मामला हो या प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन का। प्रश्न उठता है कि जलवायु परिवर्तन की विनाशकारी स्थिति को आमंत्रण देने में किसका अधिक योगदान है? विकसित देशों का या विकासशील देशों का? विकसित देश जलवायु परिवर्तन का दोष विकासशील राष्ट्रों के मत्थे मढ़ने की कोशिश करते हैं। इसीलिए अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन किसी न्यायपूर्ण और बाध्यकारी समझौते तक नहीं पहुंच पा रहे और समतामूलक पर्यावरणीय मसौदों को लागू करने में दिक्क़तें आ रही हैं।

तालिका-1

ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जक देश

क्रमांक	देश	कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन (लाख टन में)	प्रतिव्यक्ति कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन (लाख टन में)
1.	संयुक्त राज्य अमरीका	6,046	20.6
2.	चीन	5,007	3.8
3.	रूस	1,524	12.6
4.	जापान	1,257	9.9
5.	जर्मनी	808	9.8
6.	कनाडा	639	60.0
7.	ब्रिटेन (यू.के.)	587	9.8
8.	भारत	1,342	1.2
9.	कोरिया	465	9.7
10.	विश्व	28,953	4.5

स्रोत : *वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुट, 2010 (जनवरी 2010 तक अद्यतन)*

जलवायु परिवर्तन का एक अन्य कारण है– क्लोरोफ़्लोरो कार्बन का उत्सर्जन। ये वायुमंडल में ऊपर जाते हैं और ओजोन परत को क्षति पहुंचाते हैं। ओजोन परत, सौर विकिरण में उपस्थित पराबैंगनी किरणों से धरती पर निवास करने वाले प्राणियों की रक्षा करती है और जीवनरक्षक छतरी का काम करती है। क्लोरोफ़्लोरो कार्बन का उपयोग रेफ्रिजरेटर, एयरकंडीशनर, फ़ोम और एरोसोल आदि के निर्माण में होता है। ब्रिटिश अंटार्कटिका सर्वेक्षण दल के अनुसार अंटार्कटिक क्षेत्र के ऊपर क़रीब 3.5 वर्गमील का एक ओजोन छिद्र बन चुका है जिसके ज़रिये पराबैंगनी किरणें धरती तक पहुंचकर तापमान में वृद्धि कर रही हैं और जलवायु में परिवर्तन ला रही हैं।

ओजोन परत हमारी रक्षा करती है किंतु इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि ओजोन हर प्रकार से हमारे लिए लाभदायक ही है। पृथ्वी के तापमान को बढ़ाने और जलवायु में परिवर्तन लाने में एक अन्य प्रकार के ओजोन का भी योगदान होता है। यह ओजोन वह है जो वायुमंडल के निचले भाग में निर्मित होती है। इसके मुख्य स्रोत हैं– पेट्रोल और कोयला जैसे ईंधन। इसके अलावा मिथेन भी वायुमंडल के निचले भाग में ओजोन गैस का निर्माण करती है। इस वज़ह से पृथ्वी का तापमान बढ़ता है और जलवायु परिवर्तन का संकट पैदा होता है।

जलवायु को बिगाड़ने में परमाणु संयंत्रों का भी बहुत योगदान है। आज परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग का मुद्दा इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि परंपरागत ईंधन समाप्ति की ओर अग्रसर हैं। एक प्रतिवेदन के अनुसार वर्तमान में परमाणु संयंत्रों से पूरे संसार में लगभग दस लाख मेगावाट बिजली पैदा की जा रही है तथा दिनोंदिन इस प्रकार की बिजली की मात्रा बढ़ती जा रही है। ऐसी दशा में वायुमंडल में उत्सर्जित ताप की मात्रा तो बढ़ेगी ही। आमतौर पर पांच सौ मेगावाट के संयंत्र में प्रशीतक के रूप में प्रयुक्त होने वाले जल को जब किसी झील या नदी में छोड़ा जाता है तब उस झील या नदी में दस से तीस डिग्री सेल्सियस तक की तापीय वृद्धि होती है। इसे कम करके जलवायु परिवर्तन की विकृति को रोका जा सकता है।

व्यापक वन विनाश ने भी जलवायु की दशाओं को बिगाड़ा है। वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट के अनुसार, वर्ष 1950 से 1983 के मध्य अमरीका के 38 प्रतिशत और अफ्रीका के 24 प्रतिशत वन समाप्त हो गए थे। नाइजीरिया के 5 प्रतिशत, परागुआ के 4.6 प्रतिशत, जमैका और श्रीलंका के 6.5 प्रतिशत तथा नेपाल के 3 प्रतिशत वन प्रत्येक दशक काटे जा रहे हैं। कुछ देशों में वन का प्रतिशत तो इतना कम हो गया है कि वहां मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। उदाहरण के लिए अफ्रीकी देश सियरालियोन में जहां पहले 7.4 प्रतिशत क्षेत्रफल पर वन थे, वहीं आज यह प्रतिशत घटकर मात्र 3.0 ही रह गया है। इसी प्रकार के प्रतिमान एशिया में भी देखने को मिलते हैं। उदाहरणार्थ, जावा और सुमात्रा जैसे सुंदर द्वीपों वाले इंडोनेशिया के एक-तिहाई वन क्षेत्र अब समाप्त हो चुके हैं। दक्षिणी अमरीका महाद्वीप की बात की जाए तो वहां ब्राज़ील के अमेजन बेसिन के एक-चौथाई वन नष्ट हो चुके हैं।

अमरीकन प्रोग्राम फ़ॉर नेचर कंवेंशन के मुताबिक, अगले दो दशक में कोस्टारिका और पनामा जैसे देशों में संपूर्ण वन क्षेत्र लुप्त हो जाएंगे। भारत की स्थिति भी प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती क्योंकि यहां भी प्रतिवर्ष लगभग तेरह लाख हेक्टेयर क्षेत्र के जंगल समाप्त हो रहे हैं। विभिन्न प्रकार के वनों की कटाई के भयंकर परिणाम सामने आए हैं। इनमें सर्वाधिक चिंताजनक है ऊष्णकटिबंधीय सदाबहार वनों का विनाश। उष्णकटिबंधीय सदाबहार वनों को 'पृथ्वी का फेफड़ा' भी कहा जाता है यानी इन्हीं की बदौलत हमारी पृथ्वी सांस लेती है। इन वनों के विनाश से वायुमंडल में कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा में चिंतनीय वृद्धि हुई है। संयुक्त राष्ट्र की पर्यावरण संबंधी एजेंसी (यूनाइटेड नेशंस इंवायरनमेंटल प्रोग्राम) के पिछले तीन दशक के अध्ययन के अनुसार पृथ्वी पर पैदा होने वाली कुल कार्बन डाई-ऑक्साइड को कार्बन-चक्र में लाने की क्षमता अपर्याप्त साबित होती जा रही है। यह जलवायु परिवर्तन के लिहाज़ से घातक है।

लेकिन निर्वनीकरण से उपजी समस्याओं की शृंखला यहीं समाप्त नहीं होती। वन विनाश के कारण एक अन्य प्रक्रिया भी जन्म लेती है जिसके तहत हरियाली विहीन मिट्टी सूर्य की किरणों को परावर्तित करके वापस लौटा रही है। इस वज़ह से वर्षा में कमी आ रही है। जलवायु परिवर्तन के कारणों की चर्चा करते समय सामान्य प्राकृतिक कारकों की भूमिका भी हमारे सामने आती है। इसके अंतर्गत ज्वालामुखी उद्गार और भूकंप जैसे विनाशकारी कारकों का नाम लिया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन पर डब्ल्यूडब्ल्यूएफ़ के एक प्रतिवेदन के मुताबिक हिमालय के ग्लेशियर

तालिका-2

ग्रीनहाउस गैसें– स्रोत एवं प्रभाव

क्रमांक गैस	स्रोत	प्रभाव
1. कार्बन डाई-ऑक्साइड	ऊर्जा उत्पादन के लिए ईंधन का दहन (पेट्रोल, कोयला, लकड़ी)	पृथ्वी के ताप में वृद्धि
2. कार्बन मोनोऑक्साइड	ऊर्जा उत्पादन में ईंधन का अधूरा दहन	सांस और फेफड़ों की समस्या
3. सल्फ़र डाई-ऑक्साइड	गंधयुक्त ईंधन का दहन	अम्लीय वर्षा
4. नाइट्रोजन ऑक्साइड	भट्ठियों में ईंधन का जलना	ताप वृद्धि और श्वास रोग
5. ओजोन	हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन के ऑक्साइड	ताप वृद्धि और फेफड़ों में क्षति
6. मीथेन	प्राकृतिक गैस एवं अवशिष्ट पदार्थ	पृथ्वी के तापमान में वृद्धि
7. क्लोरोफ़्लोरो कार्बन	औद्योगिक उत्सर्जन	ओजोन क्षरण, ताप वृद्धि
8. अन्य हाइड्रोकार्बन	औद्योगिक क्रियाओं के दौरान	ताप वृद्धि, आंखों में जलन

प्रतिवर्ष 8 से 64 मीटर की दर से सिकुड़ रहे हैं। किलीमंजारो के ग्लेशियर वर्ष 1910 से 2005 की अवधि के मध्य लगभग अस्सी फ़ीसदी पिघल चुके हैं। दक्षिणी एंडीज़ पर्वतमाला में स्थित कटुलस्ख्या बर्फ़ टोपियां वर्ष 1960 के बाद बीस फ़ीसदी पिघल चुकी हैं। रिपोर्ट के अनुसार सन् 2005 में आर्कटिक क्षेत्र में बर्फ़ सबसे कम पाई गई। हिमनदें जल आपूर्ति के सतत स्रोत होने के साथ-साथ जलवायु चक्र में अपनी महती भूमिका निभाते हैं। हिमनदों के अस्तित्व पर मंडराता ख़तरा पूरे विश्व के लिए चिंता का विषय है और इस ख़तरे से पार पाने के लिए दुनिया के सभी देशों को मिलकर कार्य करना होगा।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव इतने बहुआयामी हैं कि उनकी सूची बना पाना संभव नहीं है। फिर भी इन प्रभावों में प्रमुख हैं : भारत के हिमालय क्षेत्र के ग्लेशियरों पर प्रभाव, वनीय पारिस्थितिकी का विनाश, सागरीय जैवमंडल पर संकट, मानव समुदाय पर ख़तरा, मानसून में विकृतियां और कृषि पर दुष्प्रभाव। मानव समुदाय पर जलजनित, तापजनित और वायुजनित बीमारियों का प्रकोप शुरू हो गया है। बाढ़ और सूखे के प्रभाव के साथ-साथ जलवायु की भयंकर दशाओं के चलते विस्थापन बढ़ा है। कृषि उत्पादन में गिरावट की आशंकाएं दर्ज़ की जा रही हैं और शरणार्थियों की समस्याएं बढ़ रही हैं। ये सारी बातें जलवायु परिवर्तन से निकटता से जुड़ी हैं। ग्रीनहाउस गैसों के स्रोतों एवं उनके घातक प्रभावों को तालिका-2 से समझा जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन के कारणों और प्रभावों का विश्लेषण करके इसके ख़तरे की गंभीरता का अनुमान लगाया जा सकता है। पर्यावरण से संबद्ध होने के कारण जलवायु परिवर्तन किसी एक देश का संकट न होकर पूरे विश्व का संकट है और इस संकट का मुक़ाबला पूरे विश्व को मिलकर ही करना होगा। पर्यावरणीय जागरुकता के प्रचार-प्रसार के लिए आज लगभग सभी मानविकी विषयों में पर्यावरणीय पहलू पर ज़ोर दिया जा रहा है। राजनीति जैसे विषय में भी रॉबर्ट गुडिन आज हरित राजनीतिक सिद्धांत की बातें करते हैं ताकि पृथ्वी की हरियाली सुरक्षित रहे। उधर रूडोल्फ़ बाहरो जैसे पारिस्थितिकीय चिंतक ने अपनी कृतियों– *फ्रॉम रेड टू ग्रीन* और *बिल्डिंग द ग्रीन मूवमेंट* के माध्यम से पर्यावरण की बदहाली के सामाजिक-राजनीतिक कारण भी खोजे हैं। कहना न होगा कि पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए और अधिक निवेश की आवश्यकता है ताकि हम सभी के अस्तित्व से जुड़ा यह ख़तरा ख़त्म हो सके। विकसित राष्ट्रों को भी चाहिए कि वे ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर राजनीति करने के बजाय ईमानदारी से विकासशील राष्ट्रों का साथ दें। ऐसा करके ही हम अपनी पृथ्वी को हरी-भरी बनाए रख सकते हैं। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।
ई-मेल : pranjaldhar@gmail.com)

योजना

आगामी अंक

मई 2010

योजना का मई 2010 अंक भारत में पर्यटन उद्योग के विविध पहलुओं पर केंद्रित होगा।

जून 2010

योजना का जून 2010 अंक देश में मानव संसाधन विकास की दशा-दिशा पर केंद्रित होगा।

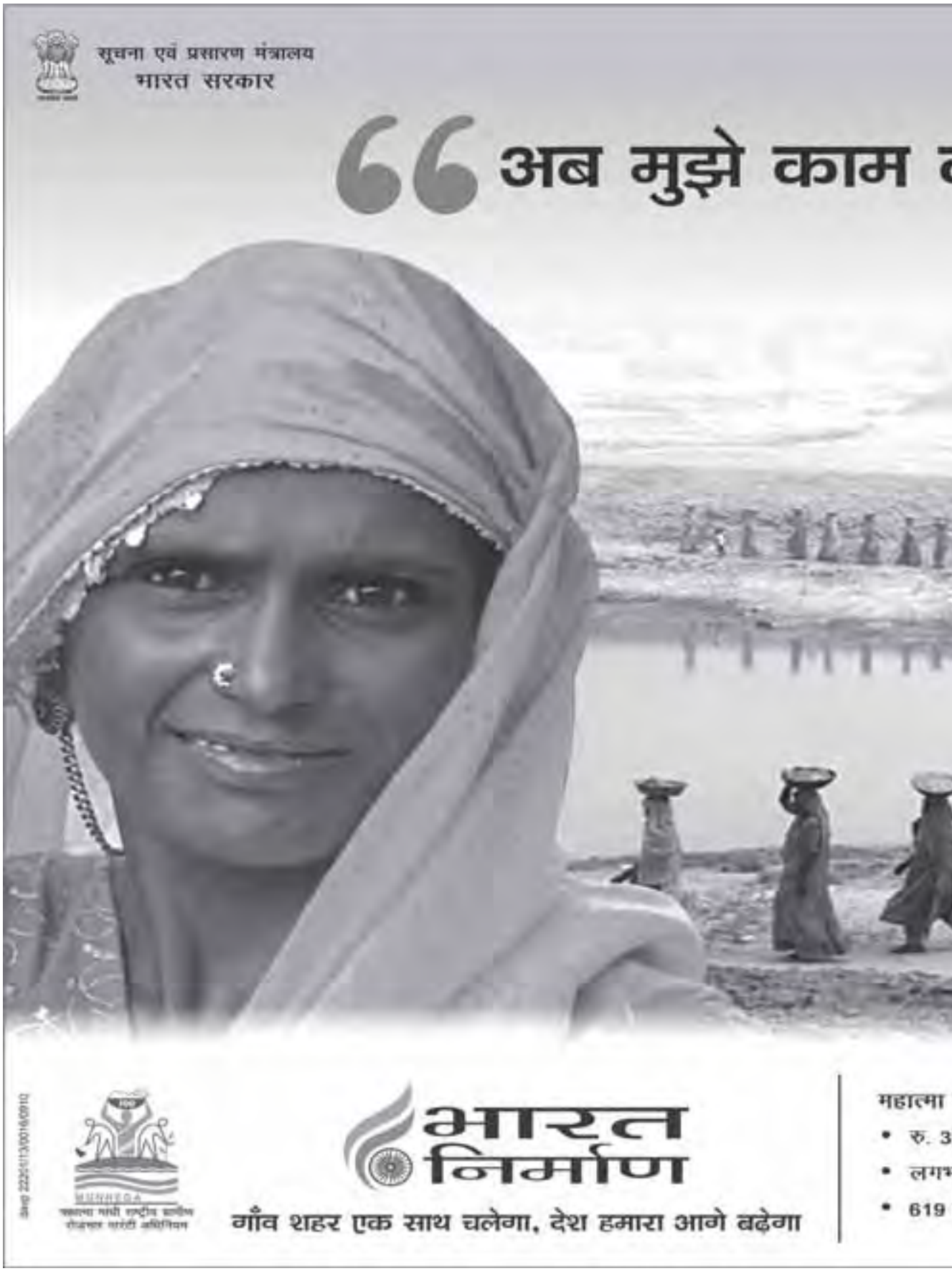
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार
अब मुझे काम
भारत निर्माण
गाँव शहर एक साथ चलेगा, देश हमारा आगे बढ़ेगा
महात्मा
• रु. 3
• लगभ
• 619

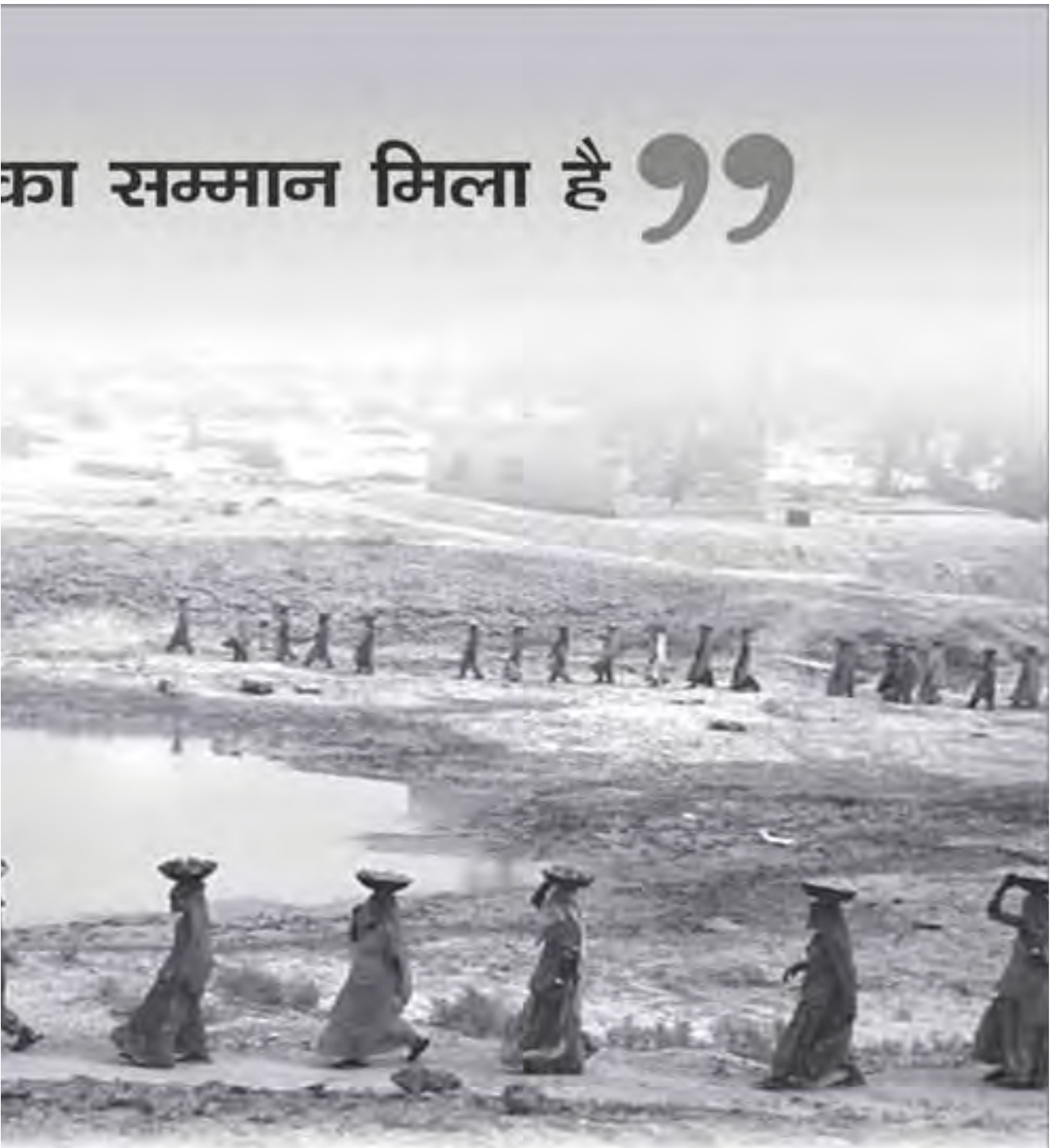

गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम
9,100 करोड़ का अब तक का सबसे बड़ा आवंटन
ग 4.19 करोड़ ग्रामीण परिवारों को काम
ज़िलों में 33 लाख रोज़गार सृजित

श्रीमती सोनिया गांधी
अध्यक्ष, यूपीए

डॉ मनमोहन सिंह
प्रधानमंत्री, भारत

YH-4/10/4

भारत करेगा 20-25 प्रतिशत कार्बन की कटौती

संयुक्त राष्ट्र को सौंपी लक्ष्य की रिपोर्ट, कृषि क्षेत्र शामिल नहीं

कार्बन उत्सर्जन कम करने की दिशा में आगे क़दम बढ़ाते हुए भारत ने संयुक्त राष्ट्र को सूचित कर दिया है कि वह 2020 तक उत्सर्जन तीव्रता में 20 से 25 फीसदी की कटौती लाएगा। हालांकि इसी के साथ उसने ज़ोर दिया है कि यह कटौती कृषि क्षेत्र पर लागू नहीं होगी।

कोपेनहेगन समझौते के तहत उत्सर्जन में कटौती करने के क़दमों के बारे में सूचना देने की तय समय सीमा से एक दिन पहले भारत ने अपने लक्ष्य ज़ाहिर किए हैं। भारत ने जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र की रूपरेखा संधि (यूएनएफसीसी) के सचिवालय को सौंपे वक्तव्य में कहा है, ''भारत अपने घरेलू उपायों के ज़रिये वर्ष 2005 के स्तर की तुलना में वर्ष 2020 तक उत्सर्जन में 20 से 25 फीसदी की कटौती लाएगा। जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर हुए अंतरराष्ट्रीय शिखर सम्मेलन के दौरान अपनाए गए रुख पर क़ायम रहते हुए सरकार ने कहा, ''यह क़दम जलवायु परिवर्तन से निपटने की वैश्विक कोशिशों में देश के योगदान की प्रकृति के होंगे। ये पूरी तरह से स्वैच्छिक होंगे और कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं होंगे।'' बहरहाल, ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कृषि क्षेत्र का क़रीब 14 फीसदी योगदान है।

कार्बन उत्सर्जन में कटौती के अपने खाके से भारत ने इसे बाहर रखा है ताकि खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके और बढ़ती आबादी की ज़रूरतों से किसी तरह का समझौता नहीं किया जाए। कार्बन उत्सर्जन में कटौती के उपाय कृषि क्षेत्र पर लागू नहीं होंगे। भारत ने चीन, ब्राज़ील और दक्षिण अफ्रीका के साथ मिलकर 'बेसिक' समूह के तहत पिछले दिनों कोपेनहेगन समझौते को आकार देने में मध्यस्थता के लिए अहम भूमिका अदा की थी। भारत ने कहा है कि वह अपने राष्ट्रीय कानूनों और नीतियों के प्रावधान के मुताबिक ही उत्सर्जन में कटौती के उपायों को लागू करेगा। भारत ने यह भी कहा है कि वह उत्सर्जन में कटौती के लक्ष्यों को पूरा करने के उपायों के बारे में बाद में ब्यौरा देगा। भारत ने इसके लिए एक विशेषज्ञ समूह गठित कर दिया है जिसके अध्यक्ष प्रमुख अर्थशास्त्री किरीट पारिख हैं। भारत की घोषणा अमरीका और यूरोपीय संघ के कटौती की प्रतिबद्धता जताए जाने के एक दिन बाद आई। ❑

पर्यावरण मित्रता में भारत पीछे

भारत भूमि को 'शस्य श्यामला' भले ही कहा गया हो लेकिन यह जानकर आश्चर्य होगा कि पर्यावरण के मित्र देशों में इसका स्थान बहुत नीचे यानी 123वां है। भारत से बेहतर तो चीन को माना गया है जिसे ऐसे राष्ट्रों की सूची में 121वें स्थान पर रखा गया है। इस सूची में 163 देश हैं। ब्राज़ील को इसमें 62वां स्थान दिया गया है जबकि रूस 69वें स्थान पर है। यह तथ्य पर्यावरण निष्पादन सूचकांक (ईपीआई), 2010 के नवीनतम अध्ययन में उभर कर आया है। डावोस में विश्व आर्थिक मंच की वार्षिक बैठक के दौरान जारी ईपीआई की रिपोर्ट के अनुसार पर्यावरण का अव्वल दोस्त आइसलैंड है। यह अध्ययन जनसंख्या नियंत्रण और प्राकृतिक संसाधनों को बचाए रखने जैसे पहलुओं के आधार पर किया गया है। ईपीआई को येल और कोलंबिया विश्वविद्यालय का विशेषज्ञ दल तैयार करता है।

इसके अनुसार नये औद्योगिक देश चीन और भारत का पर्यावरण के प्रति अनुदार होना यह सिद्ध करता है कि तेज़ आर्थिक विकास से पर्यावरण पर कितना ज्यादा दबाव बढ़ा है। भारत और चीन में कुछ सालों से तथा जर्मनी में हाल ही में नये सिरे से शुरू तेज़ आर्थिक विकास ने पर्यावरण हितैषियों को विचलित कर दिया है। सीधे और परोक्ष रूप से पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाली कार्बन गैसें पैदा करने में दुनिया में पहले स्थान पर माने जाने वाले अमरीका को ईपीआई में 61वां स्थान मिला है। इस सूची में स्थान के लिए मानक सिर्फ़ विकास है। कई पहलुओं, जैसे शुद्ध पेयजल और वनों की स्थिरता आदि में अमरीका की स्थिति अच्छी समझी जाती है। वहां मानसून वनों को विकास की बलि नहीं चढ़ाया जाता बल्कि इसके ज्यादातर राज्यों में किसी उद्योग आदि की स्थापना के पहले ही अनिवार्य रूप से वन लगाने का भी प्रावधान है। यों, ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन और वायु प्रदूषण में अमरीका की स्थिति अच्छी नहीं समझी जाती।

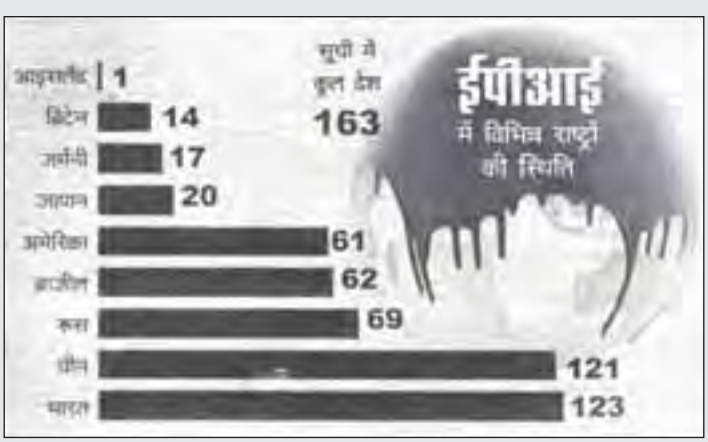

'पर्यावरण मित्र' के बतौर विभिन्न राष्ट्रों को जिन आधारों पर माना गया है उनमें पर्यावरणीय स्वास्थ्य, हवा की गुणवत्ता, जल संसाधनों का प्रबंधन, जैव विविधता, वन, मत्स्य पालन, कृषि और जलवायु परिवर्तन आदि 10 मानक श्रेणियां हैं। ईपीआई की रिपोर्ट हर दूसरे वर्ष जारी की जाती है। ईपीआई की ताज़ा सूची वर्ष 2009 से पहले के आंकड़ों पर आधारित है। ❑

पानी की समस्या

● सुभाष सेतिया

जलवायु परिवर्तन ऐसा विषय है जिसकी चर्चा इन दिनों सारी दुनिया में है। केवल चर्चा में ही नहीं है वरन पर्यावरण विशेषज्ञों, प्रशासकों और आम लोगों को चिंतित भी कर रहा है। जलवायु में परिवर्तन होना यों तो विशेष चिंता का विषय नहीं होना चाहिए क्योंकि भौगोलिक व भू-भौतिक परिस्थितियों में कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता ही रहता है। किंतु जो जलवायु परिवर्तन इस समय चर्चित है वह जलवायु में सामान्य प्राकृतिक बदलाव नहीं बल्कि मनुष्य की ज़ीवनशैली और विकास के तौर-तरीक़ों से उत्पन्न ऐसी स्थिति है जो मानवता के अस्तित्व के लिए ही ख़तरनाक सिद्ध होती जा रही है। जलवायु परिवर्तन से पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है जिससे समूचे विश्व में उष्णता बढ़ रही है। लगभग सभी हिमनद यानी ग्लेशियर पिघल रहे हैं। बर्फ़ पिघलने की रफ़्तार बढ़ने से हिमनद छोटे होते जा रहे हैं जिसके फलस्वरूप नदियों का स्वरूप बदल रहा है।

जलवायु परिवर्तन का मौजूदा दौर इसलिए अधिक गंभीर और चिंतनीय है क्योंकि इसके लिए प्रकृति नहीं हमारा अपना आचरण ज़िम्मेदार है। यह स्थिति उद्योगों और मोटरवाहनों से उत्सर्जित ऊष्मा, वन कटने तथा जीवाश्म ईंधन के इस्तेमाल के कारण बनी है। सभी देशों, विशेषकर विकसित देशों में जीवन को अधिक-से-अधिक आरामदेह बनाने की होड़ में कार्बन डाई-ऑक्साइड और अन्य गैसों का भंडार हमारे वायुमंडल में इतना अधिक हो गया है कि पृथ्वी की ऊष्मा निकलकर अंतरिक्ष में उतनी नहीं जा पा रही जितनी पहले जाती थी। इन गैसों को ग्रीनहाउस गैस कहा जाता है। ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव से पृथ्वी के वायुमंडल में उष्मा पहले भी बढ़ती रही है लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद से इस वृद्धि की रफ़्तार बहुत तेज़ हो गई है। ताज़ा सर्वेक्षणों से पता चला है कि पिछले 50 वर्षों में समुद्रों में ऐसे क्षेत्रों का विस्तार हुआ है जहां ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम है। ग्लेशियरों के लगातार पिघलने से समुद्रों में बसे कई टापू तथा किनारे की बस्तियां समुद्र में डूबती जा रही हैं। ऑक्सीजन की कमी के कारण समुद्र के भीतर रेगिस्तान बन रहे हैं यानी इन जल क्षेत्रों में जीव और वनस्पति का उत्पादन बंद होता जा रहा है। इस कारण मछलियों की संख्या घट जाने की संभावना है। ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव से समुद्र और नदियों की दशा और दिशा बदलने के साथ-साथ बारिश की मात्रा और समय में भी बदलाव आने की आशंका व्यक्त की जा रही है। इसके फलस्वरूप बाढ़, सूखा, तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप और प्रभाव व्यापक हो सकता है। एक अंतरराष्ट्रीय सर्वेक्षण से पता चला है कि ग्लोबल वार्मिंग से वर्ष 2050 तक पृथ्वी के जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों की एक चौथाई प्रजातियां लुप्त हो सकती हैं। जलवायु परिवर्तन की समस्या की गंभीरता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि जुलाई 2008 के दूसरे सप्ताह में विकासशील देशों के समूह जी-8 ने इसी विषय पर विचार-विमर्श के लिए जापान में विशेष बैठक की। इस बैठक में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह भी शामिल हुए, क्योंकि जलवायु परिवर्तन पर हो रहे अंतरराष्ट्रीय विचार-विमर्श में भारत विशेष भूमिका निभा रहा है।

भारत सरकार ने जलवायु परिवर्तन के स्वरूप और प्रभाव के बारे में 1 जुलाई, 2008 को राष्ट्रीय कार्ययोजना जारी की जिसमें कई भयावह तथ्य सामने आए हैं। इस योजना में बताया गया है कि यदि जलवायु परिवर्तन की मौजूदा गति और प्रवृत्ति को नहीं रोका गया तो समूची मनुष्य जाति, विशेषकर निर्धन व विकासशील

देशों का भविष्य अंधकारमय है। इसमें खाद्यान्न उत्पादन में और कमी आने, अनेक पुराने व नये रोग फ़ैलने जैसे ख़तरों के अलावा सबसे अधिक ज़ोर पानी की समस्या पर दिया गया है। कार्ययोजना के दस्तावेज़ के अनुसार भारत जलवायु में हो रहे परिवर्तन के अनुरूप विकास योजनाओं में बदलाव लाने पर सकल घरेलू उत्पाद की 2.6 प्रतिशत राशि ख़र्च करता है। इसमें यह भी अनुमान लगाया गया है कि इस सदी के अंत तक देश के तापमान में 3-5 डिग्री सेल्शियस तक की बढ़ोतरी होगी। इसका अधिक असर उत्तर भारत के क्षेत्रों में दिखाई देगा।

कार्ययोजना में पहले से ही विकट जल समस्या के और जटिल और गंभीर होने की आशंका प्रकट की गई है। कार्ययोजना के मुताबिक़ वर्ष 2040 से गर्मियों में बारिश की मात्रा काफी बढ़ जाएगी। इस सदी के आखिर तक इसमें 15 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है। पिछले दो वर्षों में उत्तर भारत में वर्षा और आर्द्रता में पहले से ही बढ़ोतरी दर्ज़ की गई है। कार्ययोजना के मुताबिक़ देश में उष्णता बढ़ने के फलस्वरूप हिमालय के हिमनदों के पिघलने से गंगा, सिंधु और ब्रह्मपुत्र का जलस्तर बढ़ेगा किंतु बाद में नदियां सूख जाएंगी। यदि वर्ष 2050 तक हिमालय के हिमनद पिघल गए तो उत्तर भारत में भारी जल संकट पैदा हो जाएगा। सूखा और बाढ़ की संभावनाएं बढ़ जाएंगी। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भू-गर्भशास्त्री मिलापचंद शर्मा के अनुसार वर्ष 1990 से 2007 के बीच गोमुख ग्लेशियर 22.80 हेक्टेयर पीछे खिसका है। इसी तरह गंगोत्री ग्लेशियर 1.5 किलोमीटर तक पिघल कर छोटा हो गया है। हमारे देश के उत्तरी, पूर्वी और पूर्वोत्तर हिस्सों का 40 प्रतिशत भाग पहले से ही बाढ़ की चपेट में आता रहता है जिससे लगभग हर साल 3 करोड़ लोग प्रभावित होते हैं। राजस्थान, गुजरात, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु के बहुत से इलाके सूखे का शिकार होते रहते हैं। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र पिछले पांच वर्षों तक भीषण सूखे की मार झेल रहा था। इस वर्ष वहां वर्षा हुई है।

गंगा नदी, जिसका हमारे देश के विकास और संस्कृति में विशिष्ट स्थान रहा है, अपनी गति, जलस्तर और विशिष्टता से तेज़ी से वंचित होती जा रही है। गंगा केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं भौतिक और आर्थिक दृष्टि से भी भारत, विशेषकर उत्तर भारत के लिए वरदान रही है। किंतु इसके पानी के अधिक इस्तेमाल, नदी में शहरों का कचरा पड़ने और बिज़ली परियोजनाओं व बांधों के निर्माण से इसका मूल स्वरूप नष्ट हो रहा है। इन सब कारणों से गंगा जल की शुद्धता और पवित्रता दूषित हो रही है। हाल में पर्यावरणविद डॉ. गुरुदास अग्रवाल ने गंगा को विनाश से बचाने के लिए उत्तराखंड में आमरण अनशन किया। डॉ. अग्रवाल ने गंगोत्री से उत्तरकाशी तक के 125 किलोमीटर लंबे मार्ग पर बिज़ली परियोजनाएं लगाने का कड़ा विरोध किया क्योंकि इससे न केवल नदी जल बल्कि पूरी भगीरथी घाटी का प्राकृतिक स्वरूप ही नष्ट हो जाएगा। हाल में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले 18 वर्षों में गंगा के तापमान में 6 डिग्री सेल्शियस की बढ़ोतरी हुई है। गंगा को पवित्र और प्रदूषण रहित बनाने वाले बैक्टीरिया कम होते जा रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर बी.डी. जोशी के निर्देशन में गंगा प्रदूषण के बारे में किए जा रहे शोध में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वर्ष 1990 में गंगा का तापमान 11.6 डिग्री का सेल्शियस था जो अब 14 से 17 डिग्री सेल्शियस तक पहुंच गया है। गंगा की शीतलता घट जाने से उसमें ऑक्सीजन धारण करने की क्षमता क्षीण हो रही है।

एक अन्य विद्वान और भूगर्भ शास्त्री डॉ. के.एस. वाल्दिया ने हिमालय क्षेत्र के उत्खनन से प्राप्त तथ्यों के आधार पर बताया है कि गंगा के साथ-साथ हिमालय की दक्षिणी ढलान से निकलने वाली अन्य नदियों– यमुना, काली और करनाती के स्वरूप में भारी बदलाव आ चुका है। बरसात और गर्मियों में इन नदियों में पानी की मात्रा में काफी अंतर देखा गया है। इन नदियों में गर्मियों में बरसात के मौसम के मुक़ाबले 10 प्रतिशत पानी बहता है। इससे पानी की कमी के साथ-साथ हिमालय की पारिस्थितिकी में बदलाव आ रहा है। उन्होंने इस समस्या से निपटने के लिए इन नदियों के जलग्रहण क्षेत्रों में वर्षा जल का संग्रह करने का सुझाव दिया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि पानी मनुष्य के अस्तित्व और विकास की अनिवार्य और बुनियादी आवश्यकता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि जल ही जीवन है। यह पीने के साथ-साथ घरेलू कामों, साफ़-सफ़ाई, सिंचाई, उद्योग, बिज़ली उत्पादन आदि कामों में भी इस्तेमाल होता है। कहने को तो ब्रह्माण्ड का दो-तिहाई भाग पानी है लेकिन उपयोग योग्य पानी की उपलब्धता लगातार कम होती जा रही है। जनसंख्या वृद्धि तथा पानी के उपभोग की मात्रा में वृद्धि के फलस्वरूप पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में हो रही कमी समूचे विश्व में गंभीर समस्या का रूप लेती जा रही है। अब तक यही धारणा रही है कि पानी सर्वसुलभ प्राकृतिक स्रोत है अतः इसका खुलकर इस्तेमाल होता रहा है। किंतु अब स्थिति बदल रही है। अब पानी भी एक वस्तु या जिंस का रूप लेने लगा है। हमारे देश में कई क्षेत्र ऐसे हैं जो स्थायी रूप से पानी की कमी की समस्या से ग्रस्त हैं। दूरदराज़ और पर्वतीय इलाक़ों में पानी लाने की समस्या अधिक गंभीर है। राष्ट्रीय महिला आयोग ने पानी की व्यवस्था करने में महिलाओं द्वारा उठाए जाने वाले कष्टों पर अध्ययन के बाद जानकारी दी है कि घरेलू उपयोग के लिए पानी का प्रबंध करने में 15 करोड़ महिला दिवस और क़रीब 10 करोड़ रुपये के बराबर श्रम ख़र्च हो जाता है। महिलाओं को कई-कई किलोमीटर पैदल चलकर सिर पर पानी ढोकर लाना पड़ता है। पानी लाने के लिए जहां गांवों की महिलाओं को 9-10 किलोमीटर तक चलना पड़ता है वहीं शहरों की झुग्गी-झोंपड़ी बस्तियों की औरतें घंटों नलके पर लाइन में लगकर पानी जमा करती हैं। रिपोर्ट में बताया गया कि बुंदेलखंड में औरतों का लगभग पूरा दिन ही पानी एकत्र करने में बीत जाता है। आठ-दस साल की बच्चियां भी पानी भरने के काम में लगा दी जाती हैं जिससे न वे खेल-कूद सकती हैं और न ही शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। पानी के मामले में सबसे ख़राब स्थिति राजस्थान की है। एक अनुमान के अनुसार राज्य में एक ग्रामीण महिला को पानी लाने के लिए प्रतिवर्ष औसतन 14,000 किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। जैसलमेर में कराए गए सर्वेक्षण के मुताबिक़ वहां औरतों को रोज़ तीन से पांच बार पानी लेने जाना पड़ता है और हर बार इसमें एक से डेढ़ घंटा

लग जाता है। उड़ीसा के पियालापतार क्षेत्र की ग्रामीण महिलाएं तीन किलोमीटर की दूरी से सुबह तीन से चार घंटे और शाम को पांच से छह घंटे चलकर पानी लाती हैं। उत्तराखंड के टिहरी ज़िले में औरतें 40 लीटर पानी उठाकर हर रोज़ पांच बार डेढ़ किलोमीटर की चढ़ाई करती हैं। गढ़वाल मंडल की कुछ महिलाओं को पीतल की गगरी सिर पर रखकर 20 से 24 किलोमीटर प्रतिदिन चलना पड़ता है जिसमें 5 से 7 घंटे लग जाते हैं।

कुछ समय से पानी की आपूर्ति के निज़ीकरण और इसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भागीदारी की चर्चा चल रही है। वास्तव में दिल्ली, पुणे, चेन्नई जैसे कुछ शहरों में इस दिशा में प्रयास भी हुए हैं किंतु कुछ स्वयंसेवी संगठनों और कार्यकर्ताओं के हस्तक्षेप से इन कोशिशों को विफल कर दिया गया। विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थान पानी के व्यवसायीकरण का समर्थन कर रहे हैं। इसे हर हालत में रोकना चाहिए क्योंकि पानी की आपूर्ति तथा उत्पादन का काम निज़ी हाथों में जाते ही इसके दाम बढ़ने लगेंगे और इसकी सबसे बड़ी मार ग़रीबों पर पड़ेगी जो पहले से ही इस बुनियादी ज़रूरत को प्राप्त करने में कष्ट भोग रहे हैं। भारत जैसे विकासशील देश में यह प्रयोग ख़तरनाक हो सकता है। सरकार की राष्ट्रीय जल नीति में जल स्रोतों का बेहतर प्रबंधन करके पानी के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसमें जल संसाधनों के संरक्षण और उनके बेहतर तथा किफ़ायती इस्तेमाल पर सबसे अधिक ज़ोर दिया गया है। इसके लिए वर्षा जल के संग्रह, पोखरों-तालाबों, बावड़ियों को पुनर्जीवित करने, भूजल के घटते स्तर को कृत्रिम उपायों से ऊंचा उठाने तथा जल संग्रह के नये साधनों के निर्माण का सुझाव दिया गया है। कई राज्य सरकारों ने इस दिशा में कदम उठाए हैं जिनके सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं। केंद्र सरकार ने यह भी सुझाव दिया है कि वे जल संग्रह स्थलों के पुनर्निर्माण की योजनाओं को कृषि के साथ जोड़कर चलें। इससे पेयजल तथा सिंचाई के पानी पर समान रूप से ध्यान दिया जा सकेगा। इसके लिए राष्ट्रीय जल संसाधन विकास योजना तैयार की गई है। इसमें नहर प्रणालियों को आपस में जोड़ने का भी प्रावधान है। सरकार विभिन्न राज्यों के किसानों को वर्षा जल के संग्रह के उपायों की जानकारी देने के लिए विशेष शिविर भी लगाती है।

ज़ाहिर है कि पानी की कमी और जलवायु परिवर्तन भविष्य की चिंतनीय समस्याएं हैं जिन पर समय रहते ध्यान देना आवश्यक है। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर अंकुश लगाने के लिए सबसे पहले तो विकास के मौजूदा मॉडल को बदलना होगा। इन गैसों की मात्रा बढ़ाने में उद्योगों, ईंधन आदि के साथ-साथ बढ़ती जनसंख्या का बहुत बड़ा योगदान है। समूचे विश्व की आबादी का एक-तिहाई हिस्सा चीन व भारत में है। इसलिए हमारे देश को विशेष सावधानी बरतनी होगी। हमारे यहां भूमि का मात्रा, कृषि उत्पादन, तेल उत्पादन, जल संसाधन सभी सीमित हैं किंतु जनसंख्या का दबाव लगातार बना हुआ है और आर्थिक स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप इन संसाधनों की प्रतिव्यक्ति ख़पत भी बढ़ रही है। इसलिए जनसंख्या पर नियंत्रण सबसे बड़ी चुनौती है। इसके अलावा ऊर्जा के स्वच्छ, प्रदूषण रहित और अक्षय साधनों का अधिक इस्तेमाल किया जाना चाहिए। मोटर वाहनों के ईंधन का विकल्प भी तलाशना बहुत ज़रूरी है।

इन सामूहिक व सामुदायिक उपायों के साथ ज़मीनी स्तर पर आम लोगों को जलवायु परिवर्तन और जलसंकट से उत्पन्न चुनौतियों का मुक़ाबला करने के लिए तैयार करना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए शहरों में लोग निजी मोटर वाहनों का कम और सार्वजनिक वाहनों का अधिक इस्तेमाल करें। कई यूरोपीय और पूर्वी एशियाई देशों- जापान, चीन आदि में लोग थोड़ी दूरी तक के स्थानों पर साइकिल चलाकर जाते हैं। हमारे देश में भी ऐसा किया जाना चाहिए। किंतु हो इसके विपरीत रहा है। बढ़ते उपभोक्ताबाद और जीवनस्तर ने साइकिल सवारी की रही-सही आदत को भी समाप्त करना आरंभ कर दिया है। शहरी सड़कों पर बढ़ती भीड़ ने साइकिल पर सवारी को किंचित असुरक्षित भी बनाया है जिससे नये सवार साइकिल की ओर कम ही प्रवृत्त हो पा रहे हैं। आवश्यकता इस प्रवृत्ति में आमूल परिवर्तन लाने की है।

पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए बड़े-बड़े और ऊंचे होटल बनाए जाते हैं। उनके स्थान पर झोंपड़ीनुमा आवास बनाएं जाएं। मालदीव तथा कुछ अन्य द्वीपीय देशों में यह प्रथा प्रचलित है। यदि हर गृहस्थ यह सोच ले कि वह अपने घर में या उसके आस-पास पेड़-पौधो, झाड़ियां, फूल या सब्ज़ियां लगाएगा तो पर्यावरण स्वत: ही खुशगवार हो जाएगा। इस संदर्भ में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की याद आना स्वाभाविक है जिन्होंने 7 दशक पहले ही छोटे और कुटीर उद्योगों, स्थानीय शैली की इमारतों, गांवों को आत्मनिर्भर बनाने और अपनी भौतिक ज़रूरतों पर अंकुश लगाने के लिए आत्मसंयम जैसे मूल्यों का प्रतिपादन किया था। आज जब सारी दुनिया भोगवाद और उपभोक्ता संस्कृति के अपने बुने जाल में फंसती दिखाई दे रही है तो बापू द्वारा बनाया गया सरलता और सादगी की ज़िंदगी गुज़ारने का रास्ता उपयुक्त प्रतीत हो रहा है। गांधीजी कहा करते थे कि यह पृथ्वी मनुष्य की ज़रूरतें पूरी करने में तो सक्षम है किंतु उसके लालच को पूरा नहीं कर सकती। नदी को मां मानने और उनके जल को संरक्षित करने की परंपरागत मान्यता का भी उपयोग जल स्रोतों के संतुलित प्रबंधन के लिए किया जा सकता है। नदी, सरोवरों में स्नान करने और उनके रखरखाव पर ध्यान देने, पक्षियों, पेड़-पौधों की पूजा-अर्चना तथा इसी तरह की अन्य प्रथाओं से व्यक्ति का प्रकृति के साथ भावात्मक रिश्ता जुड़ता था और वह प्रकृति की रक्षा अपना धर्म मानता था। ऐसी मान्यताओं को भी पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

पर्यावरण और पानी के संरक्षण के प्रति जागरुकता पैदा करने में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका उल्लेखनीय है। कुछ संगठन तो इस दिशा में काफी उपयोगी काम कर रहे हैं। संकट की गंभीरता को देखते हुए उन्हें अपने प्रयास बढ़ाने होंगे। आम लोगों को पानी की बचत की तकनीकों की जानकारी देने में मीडिया भी सहयोग कर सकता है। इस तरह व्यक्तिगत, सामुदायिक, और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उचित क़दम उठाकर हम जलवायु परिवर्तन व वैश्विक तपन से उत्पन्न हो रही समस्याओं का सामना कर सकते हैं और मानवता के सामने मुंह बाए खड़े विनाश के संकट से बच सकते हैं। ❑

(लेखक आकाशवाणी के समाचार निदेशक रह चुके हैं।
ई-मेल : setia_subhash@yahoo.co.in)

Ranked best school in imparting training in IAS Exam.*

*(Business Sphere, Feb. 2009)

KSG

Passionate about your success...

G.S.

with

DR. Khan

(पूर्व में, भूगोल विभाग दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय में लैक्चरर)

पी.ओ.डी. तकनीक* द्वारा सामान्य अध्ययन की तैयारी

केवल खान स्टडी ग्रुप द्वारा

सामान्य अध्ययन में 18 वर्षों के अध्यापन अनुभव से डॉ. खान द्वारा विकसित एक अनुपम विधि

सामान्य अध्ययन

केएसजी का हर दिन आपको लक्ष्य के निकट लायेगा ...हमारा वादा है।

आपके व्यक्तिगत लक्ष्य में सहभागी

● *इतिहास* ● *मनोविज्ञान* ● *लोक प्रशासन*

साक्षात्कार 2010

केएसजी का
2009 में उच्चतम सफलता अनुपात।

क्या आप छोड़ना चाहेंगे?

प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा हेतु
उपलब्ध पत्राचार कोर्स

- सामान्य अध्ययन (English/हिन्दी)
- भूगोल (English/हिन्दी)
- इतिहास (English/हिन्दी)
- लोक प्रशासन (English/हिन्दी)
- समाजशास्त्र (English/हिन्दी)
- मनोविज्ञान (English/हिन्दी)

छात्र-छात्राओं के लिए पृथक होस्टल की सुविधा में सहयोग

विवरण पुस्तिका हेतु रू.50/- का डीडी/एमओ भेजें

Separate Batches
for English & Hindi Medium

KSG खान स्टडी ग्रुप स्वयं कठिन परिश्रम में विश्वास रखता है; हमें यह अपेक्षा है कि मात्र वे प्रत्याशी ही प्रवेश लें जो कठिन परिश्रम के लिए तैयार हों। ध्यान रहे: हमें सफलता के किसी शॉर्ट-कट की जानकारी नहीं है।

KHAN STUDY GROUP

2521, Hudson Line, Vijay Nagar Chowk, Near G.T.B. Nagar Metro Station, New Delhi - 110 009
Ph: 011-45552607, 45552608, 27130786, 27131786, 09717380832, send us mail: drkhan@ksgindia.com
You can also download Registration Form from our Website: www.ksgindia.com

YH-4/10/1

ग्रीनहाउस गैस में कमी की क्योटो प्रक्रिया

क्योटो समझौते ने ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने के लिए तीन लचीली प्रक्रियाएं निर्धारित की हैं। इस समझौते में यद्यपि विकसित देशों को ही विशिष्ट उत्सर्जन लक्ष्य की प्रतिबद्धता के बंधन में बांधकर उन पर उत्सर्जन में कमी करने की अधिकतम जिम्मेदारी डाली गई है, तथापि तीनों प्रक्रियाएं इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि विश्व के किसी भी भाग में उर्त्सजन में कमी आने से उसके वातावरण पर वैसा ही इच्छित प्रभाव पड़ेगा। इसके अलावा कुछ विकसित देशों को अपने यहां उत्सर्जन में कमी लाने की अपेक्षा अन्य विकसित अथवा विकासशील देशों में उत्सर्जन कटौती प्रयासों में मदद करना अधिक सरल और किफ़ायती लग सकता है। ये प्रक्रियाएं संलग्नक-एक के देशों को उत्सर्जन कटौती दायित्व को निभाने में लचीलापन प्रदान करती हैं।

- **क्योटो समझौते में निर्धारित ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती की तीन प्रक्रियाएं कौन-सी हैं?**
  ये तीन प्रक्रियाएं हैं– संयुक्त क्रियान्वयन, उत्सर्जन व्यापार और स्वच्छ विकास तंत्र।
- **क्या है संयुक्त क्रियान्वयन?**
  संयुक्त क्रियान्वयन के ज़रिये कोई भी संलग्नक-एक देश घरेलू स्तर पर उत्सर्जन कटौती के विकल्प के रूप में अन्य किसी संलग्नक-एक देश में उत्सर्जन कटौती परियोजनाओं (संयुक्त क्रियान्वयन परियोजनाओं के नाम से पुकारी जाने वाली) में निवेश कर सकता है।
  इसके दो शुरुआती उदाहरण सामने आए हैं। एक है यूकैन एक एक सीमेंट कारखाने में गीली प्रक्रिया को सूखी प्रक्रिया में बदलना; जिसके अनुसार वर्ष 2008-2012 तक बिज़ली की खपत में 53 प्रतिशत की कमी आएगी। दूसरा उदाहरण बलगारिया की जलविद्युत परियोजना के पुनरुद्धार का है, जिससे वर्ष 2008-2012 के दौरान कार्बन डाइ-ऑक्साइड के उत्सर्जन में 2,67,000 टन की कमी आएगी।
- **स्वच्छ विकास तंत्र किसे कहते हैं?**
  क्योटो समझौते के अंतर्गत स्वच्छ विकास तंत्र (सीडीएम) क्योटो समझौते के अंतर्गत उत्सर्जन कटौती या उत्सर्जन नियंत्रण के लिए प्रतिबद्ध किसी विकसित देश को विकासशील देशों में उत्सर्जन कटौती परियोजना पर अमल करने का विकल्प प्रदान करता है। कारण, अपने देश में उत्सर्जन कटौती प्रयासों की तुलना में यह अधिक किफ़ायती हो सकता है। इस प्रकार उत्सर्जन में जो कटौती होती है, उसके बदले में निवेशक देश को कार्बन ऋण प्राप्त होते हैं जो क्योटो के लक्ष्यों की क्षतिपूर्ति करने में काम आते हैं। विकासशील देश संपोषणीय विकास की दिशा में एक क़दम आगे बढ़ाता है।
  सीडीएम परियोजना के पंजीकरण और क्रियान्वयन के लिए, सर्वप्रथम निवेशक देश को मेज़बान देश की मनोनीत राष्ट्रीय सत्ता से मंजूरी लेनी होती है, अतिरिक्तता स्थापित करनी होती है, आधारभूत रेखाएं निर्धारित करनी होती हैं और मनोनीत प्रचालन निकाय (डीओई) कही जाने वाली किसी तीसरे पक्ष की एजेंसी से परियोजना को विधिमान्य कराना होता है। सीडीएम का कार्यकारी निकाय परियोजना का पंजीकरण कर ऋण ज़ारी करता है, जिसे प्रमाणित उत्सर्जन कटौतियां (सीईआर) अथवा कार्बन क्रेडिट कहा जाता है, जिसकी प्रत्येक इकाई एक मीट्रिक टन कार्बन डाई-ऑक्साइड की कटौती या उसके समकक्ष होती है। 14 मार्च, 2010 तक 4,200 से अधिक सीडीएम परियोजनाएं निर्माणाधीन हैं। 2012 तक अपेक्षित सीईआर 2 अरब 90 करोड़ है।
- **सीडीएम परियोजना में अतिरिक्तता क्या होती है?**
  'अतिरिक्तता' सीडीएम परियोजना का एक महत्वपूर्ण तत्व होती है। इसका अर्थ है कि विकासशील देश में सीडीएम परियोजना स्थापित करने और उनसे कार्बन ऋण कमाने वाले औद्योगिक देश को यह सिद्ध करना होता है कि कार्बन उत्सर्जन में नियोजित कटौती सीडीएम परियोजना के बगैर संभव नहीं होती। उन्हें परियोजना की सीमा रेखा स्थापित करनी होती है। यह वह उत्सर्जन स्तर होता है जो परियोजना के न होने पर हो रहा होता है। इस आधारभूत स्तर और परियोजना के फलस्वरूप हासिल निम्न उत्सर्जन स्तर के बीच जो अंतर होता है वही निवेशक देश को देय कार्बन ऋण होता है। यह अतिरिक्तता कई अर्थों में हो सकती है। उदाहरणार्थ, उत्सर्जन अतिरिक्तता परियोजना से वास्तविक और स्पष्ट रूप से दीर्घकालीन ग्रीनहाउस गैसों का शमन होना चाहिए; वित्तीय अतिरिक्तता सीडीएम परियोजना में पूंजी निवेश से शासकीय विकास सहायता में विचलन नहीं आना चाहिए; प्रौद्योगिकीय अतिरिक्तता सीडीएम परियोजना की गतिविधियों से पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित और ठोस प्रौद्योगिकियों

और जानकारियों के हस्तांतरण को बढ़ावा मिलना चाहिए।

- **सीडीएम से संबंधित कुछ प्रमुख चिंताएं कौन-सी हैं?**

  सीडीएम परियोजनाओं के मामलों में झूठे ऋण का ज़ोखिम चिंता का एक बड़ा कारण है। यदि परियोजना में वास्तविक रूप से कोई अतिरिक्तता नहीं हासिल होती और उत्सर्जन में कटौती, बिना परियोजना के भी अपने आप ही हो जाती है तो परियोजना द्वारा प्रदर्शित सकारात्मक प्रभाव, वस्तुतः झूठा प्रभाव सिद्ध होता जिससे निवेशक को बिना वजह और ग़लत ऋण मिल सकता था और जिससे उत्सर्जन में कमी आने के बजाय वृद्धि हो सकती है।

- **सीडीएम परियोजनाओं के बारे में भारत की क्या स्थिति है?**

  नवीकरणीय और गैर-नवीकरणीय ऊर्जा, विनिर्माण, रासायनिक उद्योग, परिवहन, क़चरा प्रबंधन, पर्यटन, कृषि, वनीकरण, निर्माण आदि जैसे क्षेत्रों में सीडीएम परियोजनाओं के लिए व्यापक संभावनाएं हैं। जनवरी 2010 तक भारत की ओर से कुल 482 सीडीएम परियोजनाएं यूएनएफ- सीसीसी (जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का अभिसमय) के पास पंजीकृत है। समूचे विश्व से प्राप्त कुल परियोजनाओं का यह 23.7 प्रतिशत है। सभी सीडीएम परियोजनाओं को जारी कुल सीईआर 37.38 करोड़ है जिसमें से 74.19 करोड़ सीईआर के साथ भारत का हिस्सा 19.92 प्रतिशत है।

- **उत्सर्जन व्यापार क्या होता है?**

  उर्त्सजन व्यापार पर्यावरण सुधार के लिए बाज़ार आधारित वह योजना है जो संबंधित पक्षों को कतिपय प्रदूषकों के उत्सर्जन में कटौती हेतु ऋण अथवा उत्सर्जन के लिए क्रय-विक्रय की अनुमति प्रदान करता है। इसप्रकार की योजना में पर्यावरण नियामक पहले कुछ स्वीकार्य उत्सर्जन का निर्धारण करता है और तब इस योग को व्यापार योग्य इकाइयों में विभाजित करता है जिन्हें प्रायः ऋण अथवा अनुमति कहा जाता है। बाद में ये इकाइयां योजना के भागीदारों को आवंटित कर दी जाती हैं। वे भागीदार जो प्रदूषकों का उत्सर्जन करते हैं उन्हें अपने उत्सर्जन के मुआवज़े के तौर पर पर्याप्त व्यापार योग्य इकाइयां हासिल करनी होंगी। जो भागीदार उत्सर्जन में कटौती करेंगे उनको अतिरिक्त इकाइयां दी जाएंगी, जिन्हें वे उत्सर्जन कटौती में कठिनाई अनुभव करने वाले अन्य लोगों को बेच सकते हैं।

  उत्सर्जन व्यापार व्यवस्था क्योटो समझौते में शामिल पक्षों को अपनी घरेलू उत्सर्जन कटौती लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अन्य देशों से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की अनुमति क्रय करने की सुविधा प्रदान करता है। क्योटो समझौते के अंतर्गत वचनबद्ध पक्षों (संलग्नक-बी देश) ने उत्सर्जन को सीमित करने अथवा कटौती के लिए लक्ष्यों को स्वीकार कर लिया है। इन लक्ष्यों को वर्ष 2008-2012 की प्रतिबद्ध अवधि के लिए अनुमत उत्सर्जन अथवा निर्धारित राशि के स्तर के रूप में व्यक्त किया जाता है। अनुमत उत्सर्जन को निर्धारित राशि इकाइयों (एएयू) में विभाजित किया जाता है। उत्सर्जन व्यापार अतिरिक्त उत्सर्जन इकाइयों वाले देशों को अपनी यह अतिरिक्त क्षमता उन देशों को बेचने की अनुमति देता है जो अपना लक्ष्य पूरा कर चुके हैं। अन्य किसी जिंस की तरह अब कार्बन बाज़ार भी लगने लगा है जिसमें कार्बन का सौदा होता है। ऐसा व्यापार, संयुक्त क्रियान्वयन (जेआई) परियोजनाओं द्वारा सृजित उत्सर्जन कटौती इकाइयों (ईआरयू) सीडीएम परियोजना आदि द्वारा सृजित सीईआई में भी हो सकता है। ऋणों के संभावित क्रेता वे देश होते हैं जो अधिक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जित करते हैं और संभावित विक्रेता वे देश होंगे जिनमें कार्बन की मात्रा कम होती है। उत्सर्जन व्यापार कार्यक्रमों को जलवायु नीति के साधनों के रूप में राष्ट्रीय क्षेत्रीय स्तर पर जहां सरकारें भागीदार इकाइयों के प्राप्य उत्सर्जन का दायित्व तय करती हैं, स्थापित किया जा सकता है। यूरोपीय संघ उत्सर्जन व्यापार योजना इसका एक प्रमुख उदाहरण है।

- **विभिन्न पक्षों द्वारा आवश्यकता से अधिक इकाइयों की बिक्री को रोकने के लिए क्या किया जाता है?**

  विभिन्न पक्षों द्वारा आवश्यकता से अधिक इकाइयों की बिक्री को रोकने के लिए, प्रत्येक पक्ष को अपने राष्ट्रीय रजिस्ट्री पर ईआरयू, सीईआर, एएयू और आरएमयू का सुरक्षित भंडार रखना होता है ताकि वे अपने स्वयं के उत्सर्जन लक्ष्यों को हासिल करने में पीछे नहीं रहें। यह सुरक्षित भंडार, जिसे प्रतिबद्धता अवधि भंडार कहा जाता है, पक्ष की निर्धारित राशि के 90 प्रतिशत अथवा इसकी सबसे ताज़ा तरीन पुनरीक्षित सूची की पांच गुना के शत-प्रतिशत, जो भी कम-से-कम हो, से नीचे नहीं जानी चाहिए। ❑

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने इसके लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल exeed.yojana@gmail.com अथवा yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

– वरिष्ठ संपादक

विश्व के समक्ष कड़ी चुनौती

● कनक शर्मा

आजकल वैश्विक तपन की समस्या पूरे विश्व के लिए चिंता का विषय बनी हुई है। ग्लोबल वार्मिंग मानवजनित समस्या है न कि प्रकृति जनित। पृथ्वी के वातावरण में जो कुछ भी घट रहा है, उसके लिए मानव जिम्मेदार है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण जलवायु में आए अवांछित परिवर्तन ने पृथ्वी के जीवधारियों व वनस्पति जगत के समक्ष विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न कर दी हैं। कहीं असामान्य वर्षा हो रही है, तो कहीं असमय ओले पड़ रहे हैं, कहीं ग्लेशियर पिघलते जा रहे हैं, तो कहीं रेगिस्तान पसरता जा रहा है। वैश्विक तपन के कारण द्वीपीय राष्ट्रों एवं तटीय इलाक़ों के जलमग्न होने की आशंका बहुत पहले से ही व्यक्त की जा रही थी। लेकिन अब यह हक़ीक़त बन कर सामने आने लगी है। ऑस्ट्रेलिया के पास अवस्थित पापुआ न्यू गिनी देश का कार्टरेट्स नामक द्वीप डूबने वाला है। इस द्वीप की पूरी आबादी दुनिया में ऐसा पहला समुदाय बन गई है, जिसे वैश्विक तपन के कारण विस्थापित होना पड़ रहा है। बढ़ते समुद्री जलस्तर और चक्रवाती तूफानों ने इस द्वीप के फ़सलों को बर्बाद कर दिया है व पानी के स्रोतों को ज़हरीला बना दिया है। ऑस्ट्रेलिया के नेशनल टाइडफैसिलिटी सेंटर के अनुसार, वैश्विक तपन के कारण इन द्वीपों के समुद्र की जलस्तर में प्रत्येक वर्ष 8.2 मिलीमीटर की वृद्धि हो रही है। अगर ग्लोबल वार्मिंग पर नियंत्रण नहीं किया गया तो आने वाले समय में कई अन्य द्वीप भी इसी तरह डूब कर नष्ट हो जाएंगे।

वैश्विक तपन से संबंधित मुख्य तथ्य

- ग्लोबल वार्मिंग के कारण हुआ जलवायु परिवर्तन हुआ मानव इतिहास के आरंभ से अब तक के परिवर्तनों की अपेक्षा अत्यंत तीव्र गति से बढ़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के लिए मानव गतिविधियां ही मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं।
- विज्ञान एवं पर्यावरण विषयक पत्रिका *साइंस* की ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार, अगर विकसित एवं विकासशील देशों ने मिलकर ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए सार्थक क़दम नहीं उठाए तो इस सदी के अंत तक दुनिया की आधी आबादी भूखे रहने को मज़बूर हो जाएगी। इस रिपोर्ट के अनुसार न केवल पानी के स्रोत सूख जाएंगे बल्कि शीतोष्ण व समशीतोष्ण क्षेत्रों की अधिकांश उपजाऊ ज़मीन बंजर हो जाएगी। जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा प्रभाव जिन क्षेत्रों पर पड़ेगा उनमें उत्तरी अर्जेंटीना, दक्षिणी ब्राज़ील, उत्तरी भारत, दक्षिणी चीन, दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया एवं पूरा अफ्रीका शामिल है।
- दुनियाभर में क़रीब 1.2 करोड़ लोग तटीय क्षेत्रों में रहते हैं। वैश्विक तपन के कारण इन्हें विस्थापित होना पड़ेगा।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के कारण प्रत्येक वर्ष लगभग 15 लाख लोग कुपोषण का शिकार हो रहे हैं तथा 95 हज़ार लोग डायरिया और 55 हज़ार लोग मलेरिया से पीड़ित होकर अपनी जान गंवा रहे हैं।
- आईयूसीएन के अनुसार कार्बन उत्सर्जन एवं वैश्विक तपन की वर्तमान गति के कारण जीवों एवं वनस्पतियों की 420 प्रजातियां 2020 तक विलुप्त हो जाएगी।
- वैश्विक तपन के कारण गैर-ध्रुवीय ग्लेशियर अपनी जगह से पीछे खिसक रहे हैं।
- विश्व कृषि संगठन के अनुसार अगर ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के कारण पृथ्वी का तापमान इसी तरह बढ़ता रहा तो वर्षा पर निर्भर खेती के उत्पादन स्तर में 50 प्रतिशत कमी आ जाएगी।

वैश्विक तपन को रोकने के लिए किए गए प्रयास

1988 में संयुक्त राष्ट्र ने ग्लोबल वार्मिंग पर साक्ष्यों के संकलन एवं विश्लेशण हेतु जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (आईपीसीसी पैनल) का गठन किया था। 1990 में आईपीसीसी पैनल ने पहली बार अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की जिसमें बताया गया कि मानवीय गतिविधियां ग्रीनहाउस गैसों के सांद्रण में वृद्धि के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं। इसी रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि अगले 10 वर्षों में वैश्विक तापमान में 0.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हो जाएगी।

पृथ्वी के तापमान में लगातार हो रही वृद्धि को रोकने व इससे उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के संकट से बचने के लिए अबतक अंतरराष्ट्रीय स्तर जो पर कुछ प्रयास किए गए हैं वे ये हैं :

कोपेनहेगन सम्मेलन : जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर वर्ष 1992 में ब्राजील के रियो-डी-जेनेरियो में संपन्न 'पृथ्वी सम्मेलन' के दौरान पहला क़दम उठाया गया। इस शिखर सम्मेलन में 192 देशों के प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र के जलवायु परिवर्तन पर फ्रेमवर्क को स्वीकार किया था। इस संधि में जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के लिए अंतराष्ट्रीय प्रयासों की बात कही गई थी। इसमें दुनिया के तापमान को 2 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक नहीं बढ़ने देने पर सभी देशों से कार्बन उत्सर्जन में स्वैच्छिक कटौती करने की बात कही। विश्व में सालाना कार्बन उत्सर्जन की मात्रा के आधार पर चीन दुनिया का सबसे बड़ा कार्बन उत्सर्जक है जबकि अमरीका दूसरे व भारत पांचवें स्थान पर है। संधि पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों को इसमें पार्टी या पक्ष के रूप में जाना

जाता है। इसलिए 1995 के बाद इसके वार्षिक सम्मेलनों को 'पार्टियों के सम्मेलन' या 'कोप' (कांफ्रेंस ऑफ पार्टीज) या 'कोपेनहेगन सम्मेलन' के नाम से जाना जाता है। हाल ही में 18 दिसंबर, 2009 को 15वां कोपेनहेगन सम्मेलन डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में संपन्न हुआ।

क्योटो प्रोटोकॉल : पृथ्वी को वैश्विक तपन की समस्या से बचाने के लिए दिसंबर 1997 में जापान के क्योटो शहर में एक विश्वव्यापी सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में 159 देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन को 'क्योटो सम्मेलन' या 'विश्व पर्यावरण सम्मेलन' या 'ग्रीन हाउस सम्मेलन' के नाम से भी जाना जाता है। इस सम्मेलन में ग्रीनहाउस प्रभाव के लिए जिम्मेदार 6 गैसों- कार्बन डाई-ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाइड्रोक्लोरो कार्बन, पर-लूरो कार्बन एवं सल्फर हेक्सा क्लोराइड के उत्सर्जन में कटौती की बात स्वीकार की गई है। सम्मेलन में वर्ष 2012 तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में इतनी कमी पर सहमति बनी है, जिससे ग्रीन हाउस उत्सर्जन वर्ष 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत कम हो सके। समझौते के अनुसार यूरोपीय संघ ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में 8 प्रतिशत, अमरीका 7 प्रतिशत एवं जापान 6 प्रतिशत की कटौती करेगा।

इकोफ्रेंडली इमारतें : संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) की हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार इमारतों को पर्यावरण अनुकूल बनाकर, इनसे होने वाले ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को 30 प्रतिशत तक, बिना किसी लागत के, कम किया जा सकता है।

गोसैट इबुकी : जापान के एयरोस्पेस एक्सप्लीरेशन एजेंसी ने 23 जनवरी, 2009 को विश्व का पहला ग्रीनहाउस गैस पर्यवेक्षण उपग्रह यानी गोसैट को एच2ए रॉकेट से प्रक्षेपित किया, जिसे एजेंसी के द्वारा 'इबुकी' नाम दिया गया। जलवायु परिवर्तन की निगरानी के लिए समर्पित विश्व का यह पहला उपग्रह है। यह उपग्रह ग्रीनहाउस गैस पर निगरानी रखेगा। यह सौर स्थैतिक कक्षा में अगले पांच वर्षों तक कार्बन डाई-ऑक्साइड एवं मिथेन गैस के उत्सर्जन केंद्रों का अध्ययन करेगा ताकि क्योटो प्रोटोकॉल के तहत ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

इबुकी वायुमंडल में उत्सर्जित एवं वितरित ग्रीनहाउस गैसों का मानचित्र तैयार करेगा तथा यह भी पता करेगा कि इनका संकेंद्रण कहां-कहां है। इसमें ग्रीनहाउस गैस पर निगरानी रखने के लिए दो संवेदक लगे हैं :

1. तांसो एफटीएस
2. तांसो सीएआई

- **कार्बन डाई-ऑक्साइड स्क्रेपर :** वैश्विक तपन को रोकने के लिए कार्बन डाई-ऑक्साइड स्क्रेपर उस तकनीक का नाम है जो ख़तरनाक प्रदूषकों को सोखने के साथ-साथ वातावरण के तापमान में भी कमी लाने का प्रयास करेगी। इस तकनीक के अंतर्गत बड़े-बड़े शहरों में बहुमंजिला इमारतों में कंक्रीट के बने कार्बन डाई-ऑक्साइड स्क्रेपर में, बड़े आकार के पेड़ लगाकर इन्हें कार्बन डाई-ऑक्साइड के शोषक के रूप में स्थापित किया जाएगा। वैश्विक तपन को रोकने की यह तकनीक अभी शुरुआती दौर में ही है।
- **समुद्री बादल :** ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने ग्लोबल वार्मिंग को घटाने के लिए एक नयी तकनीक विकसित की है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने एक ऐसा जहाज तैयार किया है जो समुद्र के पानी का हवा में छिड़काव कर बादल तैयार करता है। इस तकनीक को 'मरीन क्लाउड' नाम दिया गया है। इसे वर्तमान में प्रशांत महासागर में चलाया जा रहा है। हवा से चलने वाले दो हज़ार जहाज़ों का यह संयुक्त बेड़ा समुद्र में इधर-उधर घूमता रहता है। इस तकनीक के द्वारा एक प्रशीतक प्रभाव तैयार किया जाता है जो धरती पर पड़ने वाली सूर्य की रोशनी को अंतरिक्ष में भेजने का कार्य करता है।
- **कृत्रिम वृक्षों की परिकल्पना :** 1975 में पहली बार वैश्विक तपन शब्द का प्रयोग करने वाले ब्रिटिश वैज्ञानिक वॉलेस ब्रुकर ने वैश्विक तपन से निपटने के लिए कृत्रिम वृक्षों की अवधारणा पर काम करना प्रारंभ किया है। वॉलेस ब्रुकर के अनुसार स्टील के बने ये वृक्ष 50 फुट लंबे व 8 फुट चौड़े होंगे तथा वायुमंडल से कार्बन डाई-ऑक्साइड गैस को अवशोषित करने के लिए इन वृक्षों में विशेष प्रकार की प्लास्टिक की जालियां लगी होंगी। यह अवशोषित गैस बाद में तरल रूप में ज़मीन के अंदर पंप कर दी जाएगी।

वैश्विक तपन को रोकने हेतु सुझाव :

- माध्यमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के शैक्षिक पाठ्यक्रम में अनिवार्य रुप से ऐसे अध्यायों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिनसे छात्रों को जलवायु परिवर्तन के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त हो सके तथा छात्र पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति जागरूक होकर वैश्विक तपन को कम करने में सहयोग कर सकें।
- विद्यालय स्तर पर शिक्षकों व विद्यार्थियों के द्वारा समय-समय पर जलवायु परिवर्तन विषय पर चर्चा-परिचर्चा की जानी चाहिए तथा शिक्षकों को विद्यार्थियों को वैश्विक तपन के कारण भविष्य में होने वाले भयावह परिणामों से अवगत कराया जाना चाहिए व साथ ही उसको कम करने के सुझावों को बताना चाहिए। ताकि भविष्य में वे जागरूक नागरिक बन सकें व ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में योगदान कर सकें।
- विश्वविद्यालय स्तर पर समय-समय पर वैश्विक तपन व जलवायु परिवर्तन जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर अंतरराष्ट्रीय सेमिनार/कार्यशाला का आयोजन कराया जाना चाहिए।
- शैक्षिक रेडियो के माध्यम से समय-समय पर वैश्विक तपन को कम करने के सुझावों से संबंधित कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाना चाहिए।
- शैक्षिक दूरदर्शन पर वैश्विक तपन के कारण निकट भविष्य में उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के संकट व उन संकटों से बचाव करने के सुझावों से संबंधित लघु नाटिका व वृत्तचित्र का प्रसारण किया जाना चाहिए।
- विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रत्येक वर्ष, पर्यावरण को सुरक्षित रखने के प्रति जागरूक शिक्षकों व विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए ताकि अन्य लोग भी जागरूक हो सकें।
- कोयले से बनने वाली बिजली के स्थान पर पवन ऊर्जा या सौर ऊर्जा के द्वारा बिजली का उत्पादन किया जाना चाहिए, तभी इसके द्वारा वैश्विक तपन में कमी लाई जा सकेगी।
- वैश्विक तपन को कम करने के लिए मुख्य रूप से फ्रिज, एसी और दूसरी कूलिंग मशीनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- अधिक से अधिक वृक्ष लगाए जाने चाहिए क्योंकि वृक्ष हवा से मुख्य ग्रीनहाउस गैस कार्बन डाई-ऑक्साइड को सोख लेते हैं।
- हम जब भी बिजली का प्रयोग करते हैं तो ग्रीन हाउस प्रभाव को बढ़ावा देते हैं, अतः काम खत्म होने के बाद टेलीविजन, कंप्यूटर, लाइट, पंखे, एयर कंडीशनर को बंद कर देना चाहिए। ❑

(लेखिका बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय में शोधछात्रा हैं।

ई-मेल : kanaksharma3@gmail.com)

जलवायु परिवर्तन का मुक़ाबला सामुदायिक कार्रवाई से

● अविनाश सोमकुवर

आदिवासी बहुल मंडला जिले के नूरपुर विकासखंड की तुमे गाओ ग्राम पंचायत के सरपंच हरि सिंह मरावी कहते हैं, ''मैने लोगों को यह कहते सुना है कि कुछ हानिप्रद गैस वायुमंडल में आकर मिल रही है, जिसके कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। यदि ऐसा है तो, इससे हमें भोजन देने वाली हमारी ज़मीन (धरती) ख़तरे में पड़ जाएगी।''

कोपेनहेगन से कोसों दूर और अंतरराष्ट्रीय वार्ताओं तथा कार्रवाई मंचों से परे मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में निवास करने वाले ग्रामीण और जनजातीय समुदायों के लिए जलवायु परिवर्तन कोई परिचित शब्दावली नहीं है। फिर भी, उन्हें अपने आसपास के वातावरण में बदलाव आता हुआ दिखाई देने लगा है। हालांकि यह पूर्णत: स्पष्ट नहीं है परंतु दिखाई दे रहा है। मध्य प्रदेश के उत्तर में श्योपुर जिला मुख्यालय से क़रीब 60 किमी दूर दुबड़ी गांव के 75 वर्षीय किसान वीर सिंह कहते हैं, ''एकमात्र परिवर्तन जो मैं अनुभव करता हूं वह यह कि कोई भी चीज़ समय पर नहीं हो रही है न बारिश न और न ही जाड़ा।'' वे आगे कहते हैं कि एक बात पक्की है कि अब तो मौसम भी धोख़ेबाज़ हो गया है। मौसम के भरोसे चलने का समय गया।''

यह नयी समझ, किसी नीति संबंधी मंचों, विशेषज्ञों और विद्वानों की ओर से उनमें नहीं पैदा हुई है। और न ही इसमें मीडिया की कोई भूमिका है। उनमें यह समझ अपने आसपास हो रहे परिवर्तनों को देखते हुए स्वत: विकसित हुई है। यह बात बिल्कुल सच लगती दिखाई दे रही है कि जलवायु परिवर्तन से देशभर के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों और अन्य समुदायों पर असर पड़ने की आशंका है। यह हमारी कृषि प्रणालियों को नुक़सान पहुंचा सकता है, जिस पर तमाम लोगों का जीवन निर्भर है। परंतु मध्य प्रदेश के इस अंचल में स्थानीय समुदायों को यह बात समझ में आ गई है कि दुनिया में सब कुछ ठीक-ठाक नहीं चल रहा है। पुरख़ों से विरासत में मिली हमारी दुनिया, पर्यावरण और इंसानों के सामंजस्य पर आधारित दुनिया, अब बदल रही है।

यह जागरुकता केवल समुदायों में ही नहीं आई है। मध्य प्रदेश ग्रामीण आजीविका परियोजना के एक अंग के रूप में 3,000 आजीविका उन्नायकों की पहल के फलस्वरूप वातावरण और पर्यावरण में आ रहे बदलावों के प्रति उनमें चेतना बढ़ रही है। वैश्विक तपन के फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित

आजीविका पर मंडरा रहे संभावित ख़तरे को माप कर बनाए गए इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण लोगों को जलवायु परिवर्तन से जुड़े मुद्दों के बारे में जानकारी देना है। इस उद्देश्य के लिए गठित हरित सेना (ग्रीन आर्मी) राज्य के 9 आदिवासी बहुल जिलों- धार, झाबुआ, बड़वानी, आलीराजपुर, मंडला, डिंडोरी, अनूपपुर, शहडोल और श्योपुर में सक्रिय है।

इन मुद्दों के समाधान में ग्रामसभा की भूमिका के बारे में जागरुकता बढ़ रही है। आजीविका उन्नायक जलवायु परिवर्तन की समस्या को समझने और उससे निपटने के मुख्य संदेश के साथ सीधे ग्रामवासियों तक पहुंचने की संभावना के प्रति सजग हैं। हरि सिंह मरावी एक फिक्रमंद सरपंच हैं। उनकी समझ में यह बात आ चुकी है कि धरती का तापमान बढ़ रहा है, और इससे लोगों की आजीविका को नुक़सान पहुंच सकता है। वे यह सब बातें ग्राम सभा के समक्ष रखना चाहते हैं।

ग्रामसभा ग्रामीण समुदाय को शिक्षित करने का मंच बन सकती है या फिर सामूहिक कार्रवाई के लिए कोई नियम तय कर सकती है। खुड़िया ग्रामपंचायत के सरपंच देव सिंह वरकड़े का कहना है कि ''यदि ग़रीब ग्रामवासियों को तकलीफ़ उठानी पड़ेगी तो उनके पास सबसे प्रभावी समाधान भी होंगे और इस तरह के समाधानों के लिए इससे बेहतर अन्य कोई मंच नहीं हो सकता है।''

परंतु ज़मीनी स्तर पर यह कैसे काम करेगा। मंडला ज़िले की जलतारा ग्रामपंचायत के पंच लामू सिंह मरावी ने कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत तय किए है। ''हमें सिर्फ़ वही काम करने हैं जो हम बरसों से करते आ रहे हैं। हमें पानी बचाना होगा, बाग-बगीचों पर ध्यान देना, उनकी अच्छी देखभाल करनी होगी, खेतों को रसायन मुक्त करना होगा, बिजली की खपत में कमी लानी होगी और जो पेड़-पौधे, जंगल और वन्य जीव बचे हैं, उनका संरक्षण करना होगा। मैं तो यही समझता हूं, और यही सबको समझना होगा।''

''धरती मां के साथ अच्छा बरताव करना सीखो और सब कुछ ठीक हो जाएगा,'' यह कहना है पश्चिमी मध्य प्रदेश के झाबुआ जिला मुख्यालय से 15 किमी दूर स्थित बेहड़वी गांव के भुवन सिंह का। तात्पर्य यह है कि वे वही करेंगे जो नैसर्गिक रूप से, पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही, जन्मजात समझदारी पर आधारित होगा। यह समझदारी उन्हें बताती है कि धरती को हराभरा और शीतल बनाए रखो।

भुवन सिंह ने ग्रामवासियों का नेतृत्व करते हुए उन्हें 13 हेक्टेयर भूमि में बाग लगाने के लिए प्रेरित किया। पिछले तीन वर्षों से वे 50 हज़ार रुपये का हरा चारा पैदा कर रहे हैं। इसी गांव के खूम सिंह का कहना है कि ''हम लोग मछली पालन के लिए 15 हेक्टेयर के तालाब की देखभाल भी कर रहे हैं। हमारे पास प्राकृतिक संसाधनों के अलावा कुछ भी नहीं है। हमें किसी भी तरह इसी के साथ गुज़ारा करना है।'' वह आजकल चर्चा में रहने वाली शब्दावली को बोझिल महसूस करता है। हमें नहीं पता कि हमारे प्रयासों से कार्बन उत्सर्जन के शमन में कितना योगदान होगा।''

परियोजना से जुड़े अन्य लोग उसकी बारीकियों को समझ रहे हैं। झाबुआ जिले के राणापुर विकासखंड के तिकड़ीजोगी गांव में आजीविका उन्नायक राम सिंह कहते हैं कि ''हम निर्धन परिवारों को यह महत्वपूर्ण जानकारी देंगे कि गांवों में किस प्रकार कार्बन उत्सर्जन पर रोक लगाई जा सकती है। जीवनस्तर में सुधार के लिए हम देसी तरीक़ों और बायोगैस (गोबर गैस) और सौर ऊर्जा प्रणलियों जैसे आधुनिक तरीक़ों का इस्तेमाल कर सकते हैं।''

जलवायु साक्षरता की गिनती प्रसार आजीविका उन्नायकों की शीर्ष प्राथमिकताओं में होती है। परियोजना समन्वयक एल एम बेलवाल का कहना है कि जलवायु परिवर्तन के बारे में ग्रामसभाओं को यह समझाना अति आवश्यक हो गया है कि इसका हमारी आजीविका पर कितना गंभीर प्रभाव पड़ सकता है।

इस विषय पर जागरुकता फैलाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। बोधगम्य पर्यावरणीय परिवर्तनों से आपसी सामंजस्य बिठाना उसके प्रभावों के शमन के ठोस समाधानों से लोगों की जीवन शैली में बदलाव, नये विकल्पों और नवाचारी कार्यों के रास्ते तलाशना और आदिवासी समुदायों को उससे बचने में मदद करना, बल्कि उसके प्रभाव तले दबने के बजाय उसको काबू में करना सिखाना, ज़रूरी हो गया है। एक प्रकार से यह एक छोटा परंतु नितांत उल्लेखनीय क़दम है। जलवायु परिवर्तन का संताप झेलने वालों को प्रकृति के कोप से बचने का तौर-तरीक़ा सीखना होगा ताकि वे अपनी नियति के नियंता स्वयं बन सकें और पर्यावरण से सामंजस्य और समरसता के अग्रदूत बन सकें। ❑

(साभार : चरखा फीचर्स)

ई-क़चरे के ढेर में दब न जाएं हम

● दिलीप मंडल

पिछले कुछ दशक में बिज़ली और बिज़ली के उपकरणों के विकास ने ज़िंदगी को आसान और सुखद बना दिया है। ज्ञान की दुनिया के साथ ही मनोरंजन की दुनिया भी बदली है। रसोईघर भी अब पहले से ज्यादा आधुनिक हुए हैं। कपड़ों की धुलाई से लेकर घर को ठंडा रखने तक के नये इंतजाम हुए हैं और इन सबके पीछे है– विद्युत और विद्युतीय उपकरण। लेकिन विज्ञान का यह वरदान अभिशाप भी बन सकता है, यह अहसास मनुष्य को अब होने लगा है। यह अभिशाप ई-क़चरे की शक्ल में आ रहा है।

विद्युतीय उपकरणों का इस्तेमाल पूरी दुनिया के साथ भारत में भी तेज़ी से बढ़ा है साथ ही इसकी दुनिया बहुत तेज़ी से बदल रही है। इस वजह से नये उपकरण जल्दी ही पुराने पड़ जाते हैं तथा कई उपकरण ख़राब हो जाते हैं। इन सबका नतीज़ा है– ई-वेस्ट, यानी इलेक्ट्रॉनिक क़चरा। इससे न सिर्फ़ हमारा पर्यावरण ख़तरे में है बल्कि लोगों के स्वास्थ्य के लिए भी गंभीर ख़तरा पैदा हो गया है। इस समय दुनिया में पैदा होने वाले कुल क़चरे में ई-कचरे का हिस्सा लगभग 5 प्रतिशत है जो प्लास्टिक क़चरे के बराबर ही है। ई-क़चरे में लगभग 1,000 ऐसे पदार्थ होते हैं जो ज़हरीले होते हैं और जिनका निबटान अगर सही तरीक़े से न किया गया तो पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य को ख़तरा हो सकता है। इसे आधुनिकता का अभिशाप मानिए या नये उत्पाद लाने और बेचने की बाज़ार की ज़रूरत, यह एक ऐसी बुराई है जिससे बचने की कोशिश तो की जा सकती है, लेकिन इसकी अनदेखी अब मुमकिन नहीं। इसलिए अब ज़रूरी हो गया है कि ई-क़चरे से बचने और उसके सुरक्षित निबटान के तरीक़े ढूंढे जाएं और इसके लिए क़ायदे-कानूनों पर सख़्ती से अमल किया जाए।

सूचना क्रांति ने देश में ई-क़चरे की समस्या को और गंभीर बना दिया है। वर्ष 2009 के पहले तीन महीनों में देश में 16 लाख से ज्यादा डेस्कटॉप और लैपटॉप बिके। गत वर्ष यानी वर्ष 2008-2009 में लगभग 68 लाख लैपटॉप और डेस्कटॉप की बिक्री हुई। हालांकि वर्ष 2007-08 के मुक़ाबले यह 7 प्रतिशत कम है। लेकिन पिछले पांच साल के आंकड़ों को देखें तो इस दौरान कंप्यूटर की बिक्री दोगुनी से ज्यादा है। डेस्कटॉप और लैपटॉप की सबसे ज्यादा बिक्री पश्चिमी भारत (37 प्रतिशत) में होती है। इसके बाद दक्षिण (23 प्रतिशत), पूर्व (22 प्रतिशत) और उत्तर भारत (18 प्रतिशत) का नंबर आता है। वर्ष 2009-10 में भारत में 73 लाख से ज्यादा लैपटॉप और डेस्कटॉप

बिकने का अनुमान है।

इससे यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि भारत में सूचना क्रांति के विस्फोट के साथ कितनी बड़ी संख्या में हार्डवेयर घरों और दफ्तरों में आ रहा है। बिक्री बढ़ने के साथ ही पुराने पड़ गए कंप्यूटर क़चरे में तब्दील होते जा रहे हैं और ऐसा सिर्फ़ कंप्यूटर के साथ ही नहीं है लगभग सभी बिजली के उपकरणों के साथ ऐसा ही हो रहा है।

दुनिया में हर रोज़ निकलने वाले क़चरे में ई-क़चरे का अनुपात तेज़ी से बढ़ता जा रहा है। ई-क़चरे से संबंधित भारत सरकार के दिशानिर्देश में कहा गया है कि वर्ष 2005 में देश में 1,46,180 टन ई-क़चरा पैदा हुआ। ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2012 तक यह मात्रा आठ लाख टन तक पहुंच जाएगा। भारत में ई-क़चरे को बड़े पैमाने पर फिर से इस्तेमाल में लाने की कोई सुविधा नहीं है। चेन्नई और बंगलुरु में ई-क़चरे को निबटाने की दो छोटी इकाइयां हैं। ऐसे में ज्यादातर ई-क़चरा असंगठित क्षेत्र में ही रि-साइकिल किया जा रहा है, जहां सुरक्षित तौर-तरीक़ों की अक्सर अनदेखी कर दी जाती है।

इलेक्ट्रॉनिक क़चरे से अभिप्राय उन तमाम पुराने पड़ चुके बेकार बिज़ली के उपकरणों से है, जिन्हें उपयोग करने वालों ने फेंक दिया है। इनमें कंप्यूटर, टीवी, डीवीडी प्लेयर, मोबाइल फोन, एमपी-थ्री प्लेयर और तमाम दूसरे विद्युत उपकरण शामिल हैं। हालांकि इलेक्ट्रॉनिक क़चरे की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है लेकिन आमतौर पर इसका मतलब उन तमाम डाटा प्रोसेसिंग, दूरसंचार और मनोरंजन के विद्युतीय उपकरणों से है जिनका इस्तेमाल घर या दफ़्तर में होता है।

तकनीकी तौर पर देखें तो जिस किसी भी उपकरण को चलाने में (बिज़ली या बैटरी) का इस्तेमाल होता है और जो बेकार हो गए हों, उन्हें डब्ल्यूईईई यानी वेस्ट इलेक्ट्रॉनिक एंड इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट की विस्तारित परिभाषा के दायरे में रखा जाएगा। यह परिभाषा ई-क़चरे की आम परिभाषा यानी बेकार हो गए बिज़ली के उपकरण और मनोरंजन उपकरणों से ज्यादा आगे जाती है।

ई-क़चरे की श्रेणी में जिन उपकरणों को रखा गया है उन्हें इन श्रेणियों में बांटा गया है :

- बड़े घरेलू उपकरण।
- छोटे घरेलू उपकरण।
- आईटी और दूरसंचार उपकरण।
- रोशनी के उपकरण।
- बिजली के उपकरण (बड़े औद्योगिक उपकरणों को छोड़कर)।
- खिलौने और मनोरंजन तथा खेल के उपकरण, चिकित्सा संबंधी उपकरण (इंप्लांट्स और संक्रमित उत्पाद अपवाद हैं)।
- निगरानी रखने और नियंत्रण रखने के उपकरण आदि।

कितना बड़ा ख़तरा

- नित नयी ख़ोज और कंपनियों के विपणन प्रयासों की वजह से कई कंप्यूटर उत्पाद बहुत कम समय में ही बाज़ार से बाहर हो जाते हैं और इनकी जगह नये उत्पाद आ जाते हैं। कई बार तो यह समय दो साल से भी कम होता है। इन उत्पादों के इस्तेमाल में हर साल लगभग 15 प्रतिशत की दर से बढ़ोतरी और इनके तेज़ी से बाज़ार में आने और पुराने पड़ जाने की वजह से अगले पांच-छह साल में ई-क़चरे में दोगुना बढ़ोतरी का अनुमान है।
- ई-क़चरे में शीशा, कैडमियम, पारा, पोलिक्लोरिनेटेड बाई फिनाइल, ब्रोमिनेटर फ्लेम रिटार्डेंट जैसे ज़हरीले पदार्थ हो सकते हैं जिनका सावधानी से निबटान ज़रूरी होता है। लेकिन पूरी सावधानी न बरते जाने से यह ज़हर पर्यावरण में पहुंच जाता है।
- ई-क़चरे के निबटान और उनके पुन: प्रयोग की दिशा में पर्याप्त ढांचागत सुविधा नहीं है। यह बात सभी जानते हैं कि ई-क़चरे का निबटान अगर सही तरीक़े से न हो तो यह कबाड़ियों के पास पहुंच जाता है और वहां से उन लोगों के पास जो इन्हें तोड़-फोड़कर बेच डालते हैं। अभी देश में ऐसी पर्याप्त सुविधाएं नहीं हैं कि इतनी बड़ी संख्या में पैदा हो रहे ई-क़चरे को पर्यावरण अनुकूल ढंग से निबटाया जा सके। इस वजह से कई विदेशी रिसाइकिलिंग संस्थाओं ने भारत में आकर इस काम को करने में अपनी दिलचस्पी दिखाई है।

किस तरह का ख़तरा

बिज़ली और बिज़ली के उपकरणों में कई तरह के पुर्ज़े होते हैं। उनमें से कई में ज़हरीले पदार्थ होते हैं जिनका अगर सावधानी से निबटान न किया जाए तो वे स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों के लिए ख़तरनाक हो सकते हैं। मिसाल के तौर पर टीवी और कंप्यूटर स्क्रीन के तौर पर इस्तेमाल होने वाले कैथोड-रे ट्यूब (सीआरडी) में शीशा, बेरियम, फॉस्फोरस और दूसरे भारी धातु होते हैं जो कैंसर की वजह बन सकते हैं। अगर कैथोड-रे ट्यूब का सावधानी से निबटान किया जाए तो इससे पर्यावरण को कोई गंभीर ख़तरा नहीं होता। लेकिन अगर इन्हें असुरक्षित तरीक़े से तोड़ा जाए या रिसाइकल किया जाए या खुले में यों ही फेंक दिया जाए तो इससे लोगों के स्वास्थ्य को ख़तरा हो सकता है। साथ ही ये पृथ्वी, हवा और भूमिगत जल को प्रदूषित कर सकते हैं। एक और उदाहरण तारों की पीवीसी कोटिंग का है। इन्हें जलाने पर ज़हरीला डाइ-ऑक्सीन निकलता है। लैंडफिल में ई-क़चरे को निबटाने का तरीक़ा भी कारगर नहीं है क्योंकि इनसे ज़हरीले पदार्थ रिसकर मिट्टी और भूजल में मिलने का ख़तरा बना रहता है। ऐसे पदार्थों में पारा, कैडमियम होते हैं साथ ही लैंडफिल में हमेशा आग लगने का ख़तरा बना रहा है, जिससे ज़हरीले रसायन से हवा के प्रदूषित होने का ख़तरा होता है।

ई-क़चरे में क्या चीज़ें होती हैं ?

ई-क़चरे में शामिल चीज़ों का दायरा काफी बड़ा है। इनमें लगभग 1,000 तरह की चीज़ें हैं, जिनमें कुछ ख़तरनाक हैं और कुछ नहीं। मोटे तौर पर इनमें लौह और अलौह धातुएं, प्लास्टिक, कांच, लकड़ी और प्लाईवुड, प्रिंटेड सर्किट बोर्ड, कंक्रीट और सेरामिक, रबर और दूसरे पदार्थ शामिल हैं। ई-क़चरे का लगभग आधा हिस्सा लोहा और इस्पात होता है। 21 प्रतिशत प्लास्टिक और 13 प्रतिशत अलौह धातु और

बाकी दूसरी चीज़ें होती हैं। अलौह धातु में तांबा, एल्युमीनियम के अलावा चांदी, सोना, प्लेटिनम और प्लैडियम जैसे क़ीमती तत्व होते हैं। ई-क़चरे में मौजूद शीशा, पारा, आर्सेनिक, कैडमियम, सेलेनियम, होक्सावैलेंट क्रोमियम और फ्लेम रिटार्डेंट की सीमा से अधिक मात्रा उन्हें ख़तरनाक बनाती है।

ई-क़चरे में वैसे तो कई ख़तरनाक पदार्थ होते हैं, लेकिन सबसे ज्यादा ख़तरा जिन पदार्थों से होता है उनमें प्रमुख हैं– शीशा, पारा, कैडमियम, क्रोमियम, हेलोजेनेटेड पदार्थ (सीएफसी), पॉलिक्लोरिनेटेड बाइफिनाइल। इनके अलावा सर्किट बोर्ड में ब्रोमिनेटेड फ्लेम रिटार्डेंट होते हैं जो जलाए जाने पर ख़तरनाक डाइ-ऑक्सिन और फ्यूरॉन पैदा करते हैं।

भारत में पैदा होने वाले कुल ई-क़चरे का 70 प्रतिशत देश के 10 राज्यों से आता है। सबसे ज्यादा ई-क़चरा पैदा करने वाले राज्य हैं– महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, दिल्ली, कर्नाटक, गुजरात, मध्य प्रदेश और पंजाब तथा सबसे ज्यादा ई-क़चरा पैदा करने वाले शहर हैं– मुंबई, दिल्ली, बंगलुरु, चेन्नई, कोलकाता, अहमदाबाद, हैदराबाद, पुणे, सूरत और नागपुर। जबकि इस समय देश में सिर्फ़ चेन्नई और बंगलुरु में ही ई-क़चरा निबटान संयंत्र हैं और वे भी छोटे आकार के। कहीं भी इस काम के लिए बड़े पैमाने पर व्यवस्था नहीं है और यह काम ज्यादातर असंगठित क्षेत्र में होता है।

देश में ई-क़चरे को अब तक सामान्य क़चरे की तरह की निबटाया जाता रहा है। उन्हें बाकी क़चरों के साथ ज़मीन के नीचे दबा दिया जाता है या फिर जला दिया जाता है। अभी इस बात का अंदाज़ा नहीं लगाया जा सका है कि इसका पर्यावरण पर कितना और किस तरह का असर हुआ है। इसकी वजह यह है कि जिन जगहों पर क़चरा दफ़नाया जाता है वहां और तमाम तरह के क़चरे भी होते हैं। क़चरे के निबटान की तकनीक का असर भी पैदा होने वाले प्रदूषण पर पड़ता है। एक अध्ययन से पता चला है कि लैंडफिल में निबटाए गए ई-क़चरे के ख़तरों की अनदेखी नहीं की जा सकती क्योंकि लैंडफिल की प्रकृति आम मिट्टी से अलग होती है और वहां ई-क़चरे में मौजूद धातुओं से रिसाव की वजह से ख़तरा बढ़ जाता है। इस लिहाज़ से लैंडफिल ई-क़चरे के निबटान का सुरक्षित रास्ता नहीं है। ई-क़चरे के निबटान का दूसरा तरीक़ा उन्हें उच्च ताप पर जला देना है। इससे क़चरे की मात्रा भी घट जाती है और साथ ही कई तरह के ख़तरनाक क़चरे का प्रभाव कम हो जाता है। लेकिन इस विधि का दोष यह है कि इससे क़चरे का कुछ हिस्सा हवा में पहुंच जाता है। अभी तक इस बारे में ज्यादा आंकड़े मौजूद नहीं हैं। इसके अलावा ई-क़चरे में मौजूद भारी धातु का नाश इस तरह नहीं हो पाता और जलने के बाद भी वे बचे रहते हैं।

भारत सरकार ने ई-क़चरे के सुरक्षित प्रबंधन के लिए ख़तरनाक कचरे के प्रबंधन, निबटान और सीमा के बाहर ढुलाई के नियम वर्ष 2008 में बनाए हैं जिसने अब पुराने नियमों की जगह ले ली है। इसमें पहली बार ऐसी व्यवस्था की गई है कि ख़राब हो गए बिज़ली और बिज़ली के उपकरणों की रिसाइकिलिंग या रिप्रोसेसिंग करने वाले को केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड में पंजीकरण कराना होगा। इस नियम का मकसद है। ई-क़चरे के बेहतर और पर्यावरण का हितैषी निबटान करना। इसके लिए पर्यावरण मंत्रालय ने एक टास्क फोर्स का भी गठन किया है। टास्क फोर्स ने इस संबंध अपनी रिपोर्ट दे दी है और अब दिशा-निर्देश भी मंत्रालय और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की वेबसाइट क्रमशः www.envfor.nic.in और www.cpcb.nic.in पर उपलब्ध हैं। दिशानिर्देश में इलेक्ट्रिक और इलेक्ट्रॉनिक ई-क़चरे के अलग-अलग स्रोत की पहचान के लिए निर्देश दिए गए हैं। इसमें ई-क़चरा पैदा करने वाले को जिम्मेदार ठहराने की जगह ई-क़चरे को फिर से इस्तेमाल योग्य बनाने पर ज़ोर दिया गया है।

बिज़ली और बिज़ली के उपकरण बनाने वालों के लिए दिशा-निर्देश

बिज़ली और बिज़ली के उपकरण बनाने वालों को अपने उत्पाद के साथ शुल्क लगाने की इज़ाज़त होनी चाहिए, ताकि वे बाद में उन उत्पादों को वापस ख़रीद सके। बाय बैक की व्यवस्था लागू करने की लागत जोड़कर उत्पाद की जो क़ीमत हो उस क़ीमत की सूची ग्राहक को उपलब्ध कराई जानी चाहिए। उत्पादक की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह इस्तेमाल के लायक न रहे उत्पादों का संग्रह करे। इसके लिए उन्हें संग्रह केंद्र और गोदाम बनाने चाहिए। इसके लिए सरकार और निजी क्षेत्र के बीच सहयोग के पीपीपी (निजी-सार्वजनिक साझेदारी) मॉडल को अमल में लाया जा सकता है। बिज़ली और बिज़ली उत्पाद के निर्माताओं को उत्पाद के साथ निम्नलिखित जानकारियां देनी चाहिए :

- उपकरण में कौन से ख़तरनाक पदार्थ हैं।
- उपकरण में अगर टूट-फूट हो जाए तो उससे कैसे सुरक्षित ढंग से निबटा जाए, इस बारे में एक पुस्तिका दिया जाना जाहिए।
- क्या करें और क्या न करें के बारे में एक पुस्तिका होनी चाहिए।
- जब उत्पाद काम के लायक न रह जाए तो उसके निबटान के तरीक़े का ब्यौरा होना चाहिए।
- बेकार हो चुके उत्पाद को कहां जमा किया जा सकता है इसके बारे में संग्रह केंद्र और संगठनों का ब्यौरा, उनका पता, फोन नंबर, 24 घंटे हेल्पलाइन नंबर और ई-मेल का पता आदि दिया जाना चाहिए। ऐसे उत्पादों का संग्रह करने वालों के लिए आने-जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

इसके अलावा भारत में ई-क़चरा के निबटारे के नये नियमों को भी अंतिम रूप दिया जा रहा है। इसके तहत कंप्यूटर, म्यूजिक सिस्टम, मोबाइल फोन तथा अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरण बनाने वालों की भी ये जिम्मेदारी होगी कि इन उत्पादों के ई-क़चरा बन जाने पर वे इनका सुरक्षित निबटान करें। नये नियमों में ई-क़चरे के प्रबंधन की ज़रूरतों, उनके संग्रह, ढुलाई और आयात-निर्यात के बारे में नियम बनाने, पर्यावरण अनुकूल तरीक़े से रिसाइक्लिंग यानी दोबारा इस्तेमाल जैसे पक्ष शामिल होंगे। इसे बनाने में एनजीओ और निर्माता कंपनियों के संगठनों की मदद ली गई है। इन नियमों को मानना तमाम पक्षों के लिए बाध्यकारी होगा।

उम्मीद है कि दुनियाभर के अनुभवों से सीख लेकर और इस मसले से जुड़े तमाम पक्षों की राय लेकर बनाए जा रहे नियमों से भारत में ई-क़चरे का निबटान पर्यावरण अनुकूल और व्यवस्थित तरीक़े से हो पाएगा और हमारे शहर ई-क़चरे के ढेर में दब जाने के ख़तरे से उबर जाएंगे। ❑

(लेखक पत्रकार हैं और *वेब मीडिया* से जुड़े हैं।

ई-मेल : dilipcmenoaQl@gmail.com)

ये हैं ग्रीनहाउस गैसें

वातावरण में 30 से ज्यादा ऐसी गैसें हैं जिन्हें ग्रीनहाउस गैसों की श्रेणी में रखा जा सकता है, लेकिन इनमें कार्बन डाई-ऑक्साइड और मिथेन को सबसे हानिकारक माना जाता है।

- हर इंसान कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ाने में योगदान करता है। हम जो सांस छोड़ते हैं, वह कार्बन डाई-ऑक्साइड ही है। चूल्हा जलाने से निकलने वाला धुआं भी कार्बन डाई-ऑक्साइड है। लेकिन पेड़-पौधे सूरज की रोशनी में इस गैस को सोख लेते हैं। इसी वजह से हज़ारों सालों से कभी वातावरण में कार्बन डाई-ऑक्साइड बढ़ने की समस्या पैदा नहीं हुई। लेकिन औद्योगिक सभ्यता यह समस्या अपने साथ लेकर आई। आज जब हम बिजली पैदा करते हैं, मोटरवाहन चलाते हैं, विमान चलाते हैं या कारखानों में मशीनें चलाते हैं, तो ग्रीनहाउस गैसें बड़ी मात्रा में निकलती हैं।
- मिथेन गैस कृषि एवं पशुपालन संबंधी गतिविधियों से पैदा होती है। यह गैस ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा करने में भूमिका तो ज़रूर निभाती है, लेकिन इसे कम ख़तरनाक इसलिए माना जाता है, क्योंकि मिथेन का

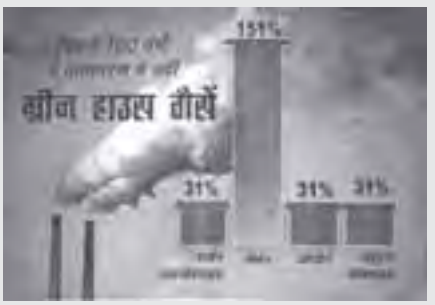

जीवनकाल छोटा, सिर्फ़ सात साल का होता है। इसके बाद यह गैस कार्बन डाई-ऑक्साइड और पानी में विघटित हो जाती है।
- ओजोन गैस की परत ख़तरनाक पराबैंगनी किरणों से धरती को बचाती है। यह परत दोनों ध्रुवों के आठ किलोमीटर ऊपर से लेकर भू-मध्यरेखा के 15 किलोमीटर ऊपर तक धरती के रक्षाकवच के रूप में मौजूद है। इसी ऊंचाई पर ज्यादातर मौसम और जलवायु संबंधी परिघटनाएं होती हैं। धरती पर जलते जीवाश्म ईंधन पर धूप की प्रतिक्रिया से ओजोन गैस पैदा होती है।
- ओजोन परत में छेद होने की आशंका भी एक बड़ी चिंता है। यह ख़ातरा क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) की बढ़ती मात्रा से पैदा हुआ। सीएफसी औद्योगिक गैसें हैं। मुख्यरूप से ये रेफ्रिजरेटर और एयर कंडीशनरों से निकलती हैं। ये गैसें सदियों तक वातावरण में बनी रहती हैं। पराबैंगनी किरणों की मौजूदगी में ये अति सक्रिय हो जाती हैं, जिसके असर से ओजोन परत को नुक़सान पहुंचता है। इसीलिए माना जाता है कि सीएफसी गैस का एक कण कार्बन डाई-ऑक्साइड के एक कण से दस हज़ार गुना ज्यादा ख़तरनाक होता है। ❑

कैसे-कैसे ख़तरे

जलवायु परिवर्तन का ख़तरा निम्नलिखित रूपों में सामने आ सकता है :

- जलवायु परिवर्तन का असर कई तरह की प्राकृतिक आपदाओं के रूप में देखने को मिल सकता है। अगर धरती का तापमान 2 डिग्री सेल्शियस बढ़ता है, तो तूफान व समुद्री चक्रवातों की औसत ताक़त 50 फीसदी बढ़ेगी जिससे ये ज्यादा विनाशकारी हो जाएंगे। हर साल आने वाले तूफानों की संख्या भी बढ़ेगी।
- वैज्ञानिकों का कहना है कि 21वीं सदी में वैश्विक तपन की वज़ह से समुद्र के जलस्तर में बढ़ोतरी शायद सबसे ज्यादा घातक साबित हो सकती है। 19वीं सदी में समुद्र का जलस्तर सालाना 0.1 मिलीमीटर के हिसाब से बढ़ रहा था। 50 के दशक में इसकी रफ़्तार तेज़ हो गई। 90 के दशक में यह बढ़ोतरी 2 मिलीमीटर प्रतिवर्ष होने का अनुमान था। अभी हर साल समुद्र के जलस्तर में औसतन 3.7 मिलीमीटर का इज़ाफ़ा हो रहा है। अगर समुद्र का जलस्तर 50 सेंटीमीटर बढ़ गया तो सवा नौ करोड़ लोग ख़तरे के दायरे में आ जाएंगे। जलस्तर एक मीटर बढ़ा तो 12 करोड़ की आबादी पर डूबने ख़तरा उत्पन्न होगा। उस हालत में बहुत से छोटे द्वीप डूब जाएंगे, कई देशों में समुद्री तट वाले इलाक़े पानी में समा जाएंगे।
- भारत जैसे देश, जहां आज भी खेती काफी हद तक मानसून पर निर्भर है, पर वैश्विक तपन का बहुत बुरा असर पड़ सकता है। जानकारों का कहना है कि भारत में मानसून की वज़ह से होने वाली कुल बारिश पर तो शायद धरती के तापमान बढ़ने का ज्यादा असर नहीं होगा, लेकिन मानसून के तौर-तरीक़े में बदलाव ज़रूर देखने को मिल सकता है। मसलन, बारिश का समय बदल सकता है, किसी इलाक़े में बरसात का मौसम सिकुड़ सकता है, तो कहीं बहुत ज्यादा बारिश हो सकती है।
- वैज्ञानिकों का कहना है कि वैश्विक तपन से पानी की समस्या और गहरी हो जाएगी। भारत में दुनिया की 16 फीसदी आबादी रहती है, लेकिन उसके पास ताज़ा जल के स्रोत महज 4 फीसदी हैं। आज़ादी के बाद से प्रतिव्यक्ति पानी की उपलब्धता घट कर एक तिहाई रह गई है और 2050 तक हर व्यक्ति को अभी मिल रहे पानी का महज लगभग 6 फीसदी ही मिल पाएगा। ❑

सौर ऊर्जा के विकास के प्रयास

● सुरेश अवस्थी

सरकार ने देश की ऊर्जा की मांग में दिन प्रतिदिन हो रही वृद्धि को पूरा करने के लिए वैकल्पिक ऊर्जा का बड़े पैमाने पर दोहन का संकल्प व्यक्त किया है। वैकल्पिक ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों में सौर ऊर्जा के दोहन पर विशेष ज़ोर दिया जा रहा है। इसी आशय से जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन बनाया गया है जो जलवायु परिवर्तन पर भारत की 8 कार्ययोजनाओं में सर्वोपरि स्थान रखता है। इस अति महत्वाकांक्षी कार्यक्रम का समारंभ प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 11 जनवरी, 2010 को नयी दिल्ली में आयोजित एक समारोह में किया। देश के वर्तमान ऊर्जा परिदृश्य और जलवायु परिवर्तन के बारे में बढ़ रही चिंताओं को देखते हुए सौर मिशन की शुरुआत एक महत्वपूर्ण पहल कही जा सकती है। सौर मिशन भारत के हज़ारों गांवों में रहने वाले करोड़ों ग्रामवासियों को विद्युत शक्ति का लाभ उठाने का अवसर प्रदान करेगा और मिट्टी का तेल, कोयला और अन्य जीवाश्म ईंधनों पर उनकी निर्भरता को कम करने में सहायक बनेगा। जून 2008 में प्रधानमंत्री ने जलवायु परिवर्तन पर जो राष्ट्रीय कार्ययोजना घोषित की थी उसमें कहा गया था कि भारत एक उष्ण कटिबंधीय देश है, जहां सूर्य का प्रकाश प्रतिदिन काफी लंबे समय तक और काफी तेज़ी के साथ उपलब्ध रहता है। इसलिए ऊर्जा के प्रबल स्रोत के रूप में सौर ऊर्जा भविष्य की ऊर्जा साबित हो सकती है। प्रधानमंत्री ने कहा है कि सौर ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग सरकार की उस रणनीति का प्रमुख अंग है जिसमें अक्षय ऊर्जा और ऊर्जा के स्वच्छ स्रोतों पर आधारित दीर्घकालिक विकास की अवधारणा को मूर्त रूप देने का संकल्प लिया गया है। सौर मिशन का लक्ष्य सौर ऊर्जा के क्षेत्र में भारत को विश्व का अग्रणी देश बनाना है। न केवल सौर ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में, बल्कि सौर ऊर्जा के उत्पादन की प्रौद्योगिकी और उसके उपयोग के उपकरणों के उत्पादन के क्षेत्र में भी।

सौर ऊर्जा, सूर्य से प्राप्त ऊष्मा को विद्युत शक्ति में बदलने से प्राप्त होती है। इसके लिए सोलर पैनलों की आवश्यकता होती है। सोलर पैनल में सोलर सेल होते हैं जो सूर्य की ऊर्जा को इस्तेमाल लायक बनाते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए पानी गर्म करने वाले सोलर पैनल, बिजली पहुंचाने वाले सोलर पैनलों से अलग होते हैं। इसे दो प्रकार से उपयोग में लाने योग्य बनाया जाता है। पहला– सोलर थर्मल विधि। इसमें सूर्य की ऊर्जा से हवा या तरल पदार्थ को गर्म किया जाता है। इस विधि का उपयोग घरेलू कार्यों में किया जाता है। दूसरी विधि है– प्रकाश विद्युत। इस विधि में सौर ऊर्जा को बिज़ली में बदलने के लिए फोटोवोल्टेक (बैटरियों) सेलों का उपयोग होता है। ये वैसे तो महंगे होते हैं परंतु इनका रखरखाव सरल और सस्ता होता है। व्यापक पैमाने पर विद्युत उत्पादन के लिए पैनलों पर भारी निवेश करना पड़ता है। विश्व के अनेक स्थानों में सूर्य का प्रकाश कम होता है। अतः वहां सोलर पैनल कारगर नहीं हो सकते। इसके अलावा, वर्षा ऋतु में भी सोलर पैनल ज्यादा बिज़ली नहीं बना पाते। आजकल सौर ऊर्जा से पानी गर्म करने वाला उपकरण देश में व्यापक रूप से इस्तेमाल होता है। अनेक संस्थानों, होटलों, भवन निर्माताओं ने सोलर वाटर हीटर का उपयोग करना शुरू कर दिया है और इससे न केवल बिज़ली की बचत हो रही है बल्कि उपभोक्ताओं के पैसे भी बच रहे हैं। कार्बन उत्सर्जन में जो कमी हो रही है वह तो है ही। देश के गांवों में अनाज सुखाने और खाद्य संरक्षण के लिए सनातन काल से सूर्य के ताप का इस्तेमाल होता आ रहा है। ज़रूरत है एक ऐसी तकनीक की जो इस सौर ताप को संग्रहित कर उसको जब चाहे तब उपयोग में लाने लायक बना दे। छोटे पैमाने पर बिज़ली पैदा करने के लिए सौर ऊर्जा एक आदर्श स्रोत है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने में सौर ऊर्जा काफी कारगर साबित हो सकती है। अनेक राज्यों के कई गांवों में सड़कों पर रात्रिकालीन प्रकाश के लिए सौर ऊर्जा के उपकरणों और लालटेनों का उपयोग धीरे-धीरे ज़ोर पकड़ने लगा है। महानगरों में चौराहों पर यातायात संकेतकों के लिए भी सौर ऊर्जा का इस्तेमाल होने लगा है। इन सब कार्यों में मुख्य रूप से फोटोवोल्टेक सेलों का उपयोग होता है। इनकी पूंजी लागत शुरू में तो काफी होती है, पर विद्युत पोषण में ह्रास की कोई संभावना के न होने और इसके परिचालन में कोई ख़र्च न होने की वजह से यह कुल मिलाकर सस्ती ही पड़ती है; वायुमंडल की

स्वच्छता बनी रहती है, सो अलग से। सौर ऊर्जा के दोहन में सबसे बड़ी समस्या यही है कि प्रारंभिक लागत काफी ज्यादा होती है। सौर मिशन के माध्यम से एक ऐसे फार्मूले की तलाश है जो इस लागत में कमी ला सके। उपयुक्त सरकारी समर्थन के माध्यम से सौर मिशन को इस मिशन को अंजाम देना होगा। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मिशन सब्सिडी देने के बारे में विचार कर रहा है। सौर ऊर्जा के नवाचारी अनुप्रयोगों के लिए 30 प्रतिशत तक सब्सिडी देने की योजना विचाराधीन है। मिशन की एक मंशा यह भी है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थी कंप्यूटरों को चलाने के लिए भी सौर ऊर्जा का इस्तेमाल हो। साथ ही प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के आवश्यक उपकरणों के संधारण में भी सौर ऊर्जा का ही यथासंभव उपयोग हो। विद्युत प्रदाय की स्थिति अधिकांश गांवों में भरोसेमंद नहीं होती; इसलिए अस्पतालों में, जहां लोगों के जीवन-मरण का प्रश्न रहता है, सौर ऊर्जा पर निर्भरता अधिक विश्वसनीय रहेगी। सौर मिशन, ऊर्जा उत्पादन से जुड़े उपकरणों के निर्माण और प्रौद्योगिकी को भी बढ़ावा देगा। भारत की प्रमुख औद्योगिक और व्यावसायिक संस्था- फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज़ (फिक्की) भी अब सौर मिशन से जुड़ गई है। इसके जुड़ने से इस उद्योग में तेज़ी आएगी ऐसा विश्वास है।

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने राष्ट्रीय सौर मिशन का उद्घाटन करते हुए सौर ऊर्जा को ऊर्जा का अक्षय और असीम स्रोत बताने के साथ निःशुल्क स्रोत बताया और कहा कि देश की ऊर्जा सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने के लिए इसका भरपूर उपयोग किया जाना चाहिए। उन्होंने सौर ऊर्जा को ऊर्जा का मुख्य स्रोत बनाने के लिए इसके इस्तेमाल को कम ख़र्चीला बनाने तथा लंबे समय तक इसका भंडारण सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर बल दिया। इस संदर्भ में उन्होंने नैनो जैसी आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करने का भी सुझाव दिया। प्रधानमंत्री ने देश में 'सोलर वैलियां' सौर घटियां बनाने की योजना पेश की। उन्होंने आशा व्यक्त की कि सब कुछ ठीक ढंग से चलता रहा तो आने वाले कुछ वर्षों में सूचना प्रौद्योगिकी की ही तरह भारत सौर ऊर्जा के क्षेत्र में भी विश्व का अग्रणी देश बनकर उभरेगा।

सोलर वैली उस औद्योगिक क्षेत्र को कहते हैं जहां पारंपरिक विद्युत के बजाय सौर ऊर्जा का इस्तेमाल होता है। चीन, जर्मनी और यूनान में इस प्रकार के कुछ औद्योगिक क्षेत्र विकसित किए गए हैं। चीन के प्रसिद्ध हिमिन उद्योग समूह ने इस दिशा में सबसे पहले शोध एवं विकास केंद्र खोला। चीन के ही झाऊ सोलर वैली में स्थित उद्योगों में सौर ऊर्जा का उपयोग होने लगा है और यह क्षेत्र ऊर्जा की खपत में लगभग 70 प्रतिशत की बचत कर रहा है। जर्मनी के फ्रैंकफर्ट शहर के पास भी सौर घाटी विकसित की जा रही है। यूरोप के अन्य देशों में भी सौर घाटियों के विकास की प्रक्रिया विभिन्न चरणों में है। परंतु यूरोपीय देशों की तुलना में भारत में इस तरह के प्रयोग की सफलता की संभावना कहीं अधिक है। सोलर वैली की उपयोगिता को देखते हुए देश में सौर विज्ञान, इंजीनियरी, अनुसंधान और विकास तथा विनिर्माण की व्यापक संभावनाएं हैं। अतः औद्योगिक घरानों को इस दिशा में आगे आने की आवश्यकता है। इससे देश की अत्यावश्यक मांग तो पूरी होगी ही, शिक्षा और रोज़गार के अनेक नये अवसर उपलब्ध होंगे। सौर घाटियां जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने में भी मदद करेंगी।

प्रधानमंत्री ने सौर ऊर्जा मिशन को 'सोलर इंडिया' का ब्रांड नाम देते हुए कहा है कि राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना में राष्ट्रीय सौर मिशन की अहम भूमिका रहेगी। इसके अंतर्गत तेरहवीं पंचवर्षीय योजना तक (यानी 2022 तक) 20 हज़ार मेगावाट सौर ऊर्जा के उत्पादन का लक्ष्य है। केंद्रीय नवीन और नवीकरणीय ऊर्जामंत्री डॉ. फारुक अब्दुल्ला ने इसे स्पष्ट करते हुए बताया कि 2022 तक 2 करोड़ वर्गमीटर के सौर उष्मा संग्राहक लगाने का लक्ष्य है, जिससे 7,500 मेगावाट विद्युत की बचत होगी। इसके अलावा इसी अवधि में 2 करोड़ सौर प्रकाश (सोलर लाइट) लगाने का भी लक्ष्य है। इससे प्रतिवर्ष क़रीब एक अरब लीटर मिट्टी के तेल की बचत होगी। सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत की कुल स्थापित विद्युत उत्पादन क्षमता 155.8 जीडब्ल्यू (गीगावाट) है, जिसमें से नवीकरणीय (अक्षय) ऊर्जा का हिस्सा केवल दस प्रतिशत है। इस स्वच्छ ऊर्जा का अधिकांश भाग पवन ऊर्जा का है। सौर ऊर्जा का अंशदान नगण्य है। सौर मिशन के तहत अगले तीन वर्षों में 1,300 मेवा सौर ऊर्जा के उत्पादन का लक्ष्य है। इसमें से 1,100 मेगावाट ऊर्जा को ग्रिड से जोड़ा जाएगा और क़रीब 200 मेगावाट ऊर्जा ग्रिड से अलग उपयोग में ली जाएगी। यह सौर मिशन की पहली कसौटी होगी। यदि यह लक्ष्य समय पर हासिल हो जाता है तो बाकी का लक्ष्य हासिल करना असंभव नहीं होगा। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, सौर ऊर्जा उत्पादन की, विशेषकर ग्रिड से जोड़े जाने वाली ऊर्जा की प्रारंभिक लागत बहुत अधिक होती है। पहली प्राथमिकता इसमें यथासंभव कमी लाने की है। सौर मिशन के अनुसार एनटीपीसी विद्युत व्यापार निगम अगले तीन वर्षों में केंद्रीय विद्युत नियामक आयोग द्वारा निर्धारित दरों पर सौर ऊर्जा खरीदेगा। राज्य सरकारों की विद्युत इकाइयों को सौर ऊर्जा के बराबर ही ताप बिज़ली दी जाएगी। इस प्रकार महंगी और सस्ती बिज़ली की मिश्रित दर उपभोक्ताओं पर लागू होगी, जो बहुत ज़्यादा नहीं होगी। एक अनुमान के अनुसार यह पांच रुपये प्रतियूनिट या उससे कम ही होगी।

सौर ऊर्जा को बढ़ावा देने वाली नीति के तहत हाल ही में (12 जनवरी, 2010 को) दिल्ली में विद्युत कंपनी बीएसईएस ने एक अन्य निजी कंपनी ऐक्मे के साथ समझौता किया है जिसके तहत बीएसईएस राजधानी और बीएसईएस यमुना को अगले 25 वर्षों तक 50 मेगावाट सौर ऊर्जा मिलेगी। दिल्ली सरकार के विद्युत सचिव की उपस्थिति में यह समझौता संपन्न हुआ। प्राप्त जानकारी के अनुसार गुड़गांव स्थित ऐक्मे टेलीपॉवर लिमिटेड कंपनी राजस्थान के विभिन्न भागों में सौर ऊर्जा के संयंत्र लगा रही है, जिनसे 150 मेगावाट बिज़ली का उत्पादन होगा। जैसलमेर, बीकानेर और जोधपुर में लगने वाले सौर ऊर्जा संयंत्रों से 50-50 मेगावाट सौर विद्युत का उत्पादन किया जाएगा। आशा है कि अगले वर्ष के मध्य तक इन संयंत्रों में विद्युत उत्पादन शुरू हो जाएगा। दिल्ली को जो बिज़ली दी जाएगी, वह जैसलमेर संयंत्र से प्राप्त होगी। बिज़ली की क़ीमत केंद्रीय विद्युत नियामक आयोग तय करेगा। कुछ अन्य प्रयास इस प्रकार हैं :

सौर ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहन की दिशा में राष्ट्रपति भवन ने एक आदर्श क़दम उठाया है। राष्ट्रपति भवन में विद्युत आवश्यकताओं

की पूर्ति हेतु 50 किलोवाट क्षमता का सौर ऊर्जा संयंत्र लगाया गया है। राष्ट्रपति भवन परिसर में सौर ऊर्जा से जलने वाले 100 पथ प्रकाश (स्ट्रीट लाइट) भी लगाए गए हैं। इसका उद्घाटन 25 जुलाई, 2009 को राष्ट्रपति ने किया।

देश का पहला मेगावाट स्तर का ग्रिड से जुड़ने योग्य सोलर फोटोवोल्टेक पावर प्लांट पश्चिम बंगाल के आसनसोल में स्थापित किया गया है। इसकी स्थापना वेस्ट बंगाल ग्रीन एनर्जी डेवलपमेंट कार्पोरेशन ने की है।

भारत की सबसे बड़ी सौर ऊर्जा से चलने वाली खाना पकाने की प्रणाली शिरडी के प्रसिद्ध साईं बाबा के मंदिर परिसर में लगाई गई है, जिसमें प्रतिदिन क़रीब 17 हज़ार लोगों के लिए खाना पकता है। इस परियोजना का उद्घाटन डॉ. फारुक अब्दुल्ला ने 30 जुलाई, 2009 को किया था।

सौर ऊर्जा का एक रोचक परंतु प्रभावी उपयोग महाराष्ट्र के किसानों ने करना शुरू किया है। राज्य के अहमदनगर और कुछ अन्य जिलों के किसानों और फलोत्पादकों ने जानवरों से अपने खेतों की रक्षा के लिए सौर ऊर्जा संवाहित बाड़ लगाकर एक अभिनव प्रयास किया है। विद्युत (सौर ऊर्जा) प्रवाहित इस तार को छूने पर ज़ोरदार झटका लाता है। बड़े से बड़ा पशु भी झटका खाने के बाद दोबारा इस बाड़ के पास आने का प्रयास नहीं करता। बाड़ की यह तरक़ीब स्थानीय किसानों में काफी लोकप्रिय हो रही है।

सिद्धांत रूप से देश के 30 शहरों को 'सौर नगरों' के रूप में विकसित करने की स्वीकृति दी जा चुकी है। इनमें से 12 नगरों का मास्टर प्लान बनाया जा रहा है। सौर नगर का लक्ष्य पारंपरिक ऊर्जा की मांग में कम-से-कम 10 प्रतिशत की कमी लाना है। इसके लिए वैकल्पिक ऊर्जा के उपयोग के साथ-साथ ऊर्जा खपत में क़िफायत बरतना भी शामिल है। सौर ऊर्जा का उपयोग बढ़ाना इसी कार्यक्रम का अंग है।

अरुणाचल प्रदेश के दूरदराज के सीमावर्ती 512 गांवों में सोलर फोटोवोल्टेक प्रणाली से बिज़ली पहुंचाई गई है। इसके अलावा जम्मू-कश्मीर की गुरेज़ तहसील के 27 गांवों के 3,900 घरों में सौर ऊर्जा से प्रकाश की व्यवस्था की गई है और वे आधुनिक प्रकाश प्रणाली का पूरा आनंद उठा रहे हैं।

कोलकाता के राजभवन में भी प्रकाश, पथ प्रकाश और पानी गर्म करने के लिए 50 किलोवाट का सौर ऊर्जा संयंत्र लगाया गया है। इस संयंत्र का उद्घाटन राष्ट्रपति ने 7 दिसंबर, 2009 को किया। विशेष क्षेत्र प्रदर्शन परियोजना (एसएडीपी) के तहत स्थापित इस परियोजना के अतिरिक्त, इसी प्रकार की एक और योजना छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर के राजभवन के लिए भी स्वीकृत की गई है। वहां 45 किलोवाट का सौर ऊर्जा संयंत्र लगाया जाएगा।

सोलर फोटोवोल्टेक प्रणालियों, यथा– सौर प्रकाश, सौर लालटेन, सौर पंप आदि के लिए ऋण देने के लिए बैंकों को प्रोत्साहित करने की योजना है। सौर मिशन के माध्यम से इस प्रकार की व्यवस्था करने का प्रस्ताव है कि बैंक अपनी वर्तमान दरों पर ही इनके लिए ऋण प्रदान करें।

सौर ऊर्जा मिशन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य देश में सौर ऊर्जा का उत्पादन करने वाले संयंत्रों के निर्माण को प्रोत्साहित करना है। भारत में अभी 700 मेगावाट की फोटोवोल्टेक इकाइयों के निर्माण की क्षमता है। प्रयास है कि पॉली सिलिकॉन सामग्री के निर्माण की क्षमता इस प्रकार बढ़ाई जाए कि प्रतिवर्ष सोलर सेलों की क्षमता में 2 गीगावाट की वृद्धि हो सके। देश में सिलिकॉन सामग्री के निर्माण की क्षमता अभी बहुत सीमित है। परंतु शीघ्र ही सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में भी कुछ संयंत्रों की स्थापना होने की संभावना है। सौर तापीय ऊर्जा संयंत्रों की मांग को पूरा करने के लिए संग्राहकों, रिसीवरों और अन्य उपकरणों की बड़े पैमाने पर उत्पादन की ज़रूरत है। सौर मिशन इस काम में उत्प्रेरक की भूमिका निभाने का काम करेगा। इसके लिए विशेष प्रोत्साहन पैकेज़ की नीति तैयार की गई है। सूचना प्रौद्योगिकी विभाग की इस योजना के तहत फोटोवोल्टेक सेलों के निर्माण से संबंधित 15 प्रस्ताव सरकार के पास विचाराधीन हैं। इनमें क्रिस्टलीय और बारीक फ़िल्म वाले, दोनों प्रकार के सेलों के निर्माण का प्रस्ताव शामिल है। इन सभी 15 कंपनियों की सम्मिलित क्षमता से 2022 तक 8-10 गीगावाट सौर ऊर्जा का उत्पादन किया जा सकेगा, जो मिशन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पर्याप्त होगा।

सौर ऊर्जा के उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए अनुसंधान एवं विकास की गतिविधियों के उन्नयन की योजना बनाई गई है। इसका उद्देश्य विद्यमान अनुप्रयोगों की कार्यकुशलता में सुधार, संयंत्रों और उपकरणों की लागत में कटौती, सुविधाजनक और क्रिफायती भंडारण क्षमता में विस्तार करना है। जहां तक अनुसंधान का प्रश्न है, निम्नलिखित विषयों पर विशेष ज़ोर दिया जा रहा है :

- अभिनव प्रक्रियाओं और सामग्रियों तथा अनुप्रयोगों के विकास की दीर्घकालिक दृष्टि से बुनियादी अनुसंधान;
- मौजूदा प्रक्रियाओं, सामग्रियों और प्रौद्योगिकी में सुधार के लिए व्यावहारिक अनुसंधान ताकि वर्तमान संयंत्रों, उपस्करों के कामकाज को बेहतर बनाया जा सके।
- पारंपरिक ऊर्जा प्रणालियों के साथ मिलकर काम करने वाली (हाइग्रिड) प्रणाली के विकास की प्रौद्योगिकी की स्वीकार्यता।
- सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की सहभागिता से अनुसंधान और विकास संबंधी अधोसंरचना का विकास।

सौर मिशन के अंतर्गत उपर्युक्त लक्ष्यों को मूर्त रूप देने के लिए एक अनुसंधान परिषद की स्थापना पर ज़ोर दिया गया है, जिसमें जाने-माने वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों के साथ उद्योग जगत और सरकार के प्रतिनिधि शामिल होंगे। इसके साथ ही एक राष्ट्रीय उत्कृष्टता केंद्र स्थापित करने की बात भी कही गई है, जो अनुसंधान परिषद द्वारा तैयार योजना पर अमल करने के लिए अनुसंधान एवं विकास केंद्रों के अनुसंधान के निष्कर्षों के परीक्षण, प्रमाणन और उनको विधि मान्यता प्रदान करने के अलावा सौर ऊर्जा उद्योग के मानक भी निर्धारित करेगा। अनुसंधान परिषद और उत्कृष्टता केंद्र, दोनों मिलकर वर्तमान सौर अनुसंधान सुविधाओं की क्षमता में गुणात्मक सुधार लाने का प्रयास करेंगे।

भारत को परमाणु ऊर्जा और अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में विश्वस्तरीय वैज्ञानिक और तकनीकी क्षमताओं वाला देश बनाने में जवाहरलाल नेहरू की दूरदृष्टि के कारण ही औद्योगिक क्रांति का पदार्पण हुआ और भारत ने विश्व के अग्रणी देशों में अपनी जगह बनाई। अब उनके नाम पर रखे गए सौर ऊर्जा मिशन से भी यही आशा है कि इस क्षेत्र में भी ऐसी ही क्रांति संभव हो सकेगी। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

ग्राम न्यायालय - एक अवलोकन

● जगदीश प्रसाद भारती

भारत के संविधान की उद्देशिका में राष्ट्र के समस्त नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की व्यवस्था सुनिश्चित की गई है। भारत में आज भी 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जिसके लिए सुगम न्याय व्यवस्था का होना आवश्यक है। परंतु भारत में दीवानी और फ़ौजदारी न्यायालय ज़िलास्तर तक ही सीमित हैं जिससे सुदूर गांववासियों को वहां तक पहुंचने में काफी कठिनाई होती है। साथ ही यह ख़र्चीली और पेचीदगियों से भरी हुई है जिससे ग़रीब ग्रामीण नागरिक के लिए न्याय प्राप्त करना न केवल कठिन है बल्कि ख़र्चीला भी होता है। ग्राम न्यायालयों की स्थापना से इस विकट समस्या का समाधान हो सकेगा और ग्रामवासियों को उनके घर के पास ही सस्ता और सुलभ न्याय शीघ्र उपलब्ध हो सकेगा।

ग्रामीणों को सस्ता, सुलभ और आसान न्याय उपलब्ध कराने के उद्देश्य से विधि आयोग ने अपनी 114वीं रिपोर्ट में ग्राम न्यायालयों की स्थापना की सिफ़ारिश की तथा केंद्र सरकार ने राज्यों के विधि मंत्रियों, विधि सचिवों और उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रार तथा संबंधित विभाग की स्थायी समिति से विचार-विमर्श करने के पश्चात भारत के संविधान के अनुच्छेद 39क के अंतर्गत बिल्कुल नीचे स्तर तक अर्थात ग्राम स्तर तक न्याय उपलब्ध कराने के लिए मई 2007 में ग्राम न्यायालय का एक विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। विचार-विमर्श के बाद संसद के दोनों सदनों ने दिसंबर 2008 में ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 पारित किया और स्वीकृति के बाद देशभर में पंचायत स्तर/ग्राम स्तर तक ग्राम न्यायालय स्थापित करने का रास्ता साफ़ हो गया।

ग्राम न्यायालय की स्थापना का उद्देश्य नागरिकों को सस्ता और सुलभ सामाजिक-आर्थिक न्याय दिलाना है। ग्राम न्यायालय को समझने के लिए उचित होगा कि इसकी प्रक्रियाओं का संक्षेप में अवलोकन किया जाए जो निम्न है :

- इस अधिनियम का नाम ग्रामीण न्यायालय अधिनियम, 2008 है तथा यह जम्मू-कश्मीर, नगालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम और अन्य जनजातीय क्षेत्रों को छोड़ संपूर्ण भारत में लागू होता है।
- यह अधिनियम सरकार के राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा नियत तारीख़ से प्रभावी होगा। ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 में 8 अध्याय, 40 धाराएं तथा 2 अनुसूचियां हैं।
- ग्रामीण न्यायालय ज़िले में मध्यवर्ती (प्रखंड) स्तर पर प्रत्येक पंचायत या उनके निकटवर्ती पंचायती समूह के स्तर पर होंगे या राज्य सरकार आवश्यक समझे तो उच्च न्यायालय के परामर्श पर चल न्यायालयों की व्यवस्था भी कर सकती है।
- ग्राम न्यायालय का पीठासीन अधिकारी 'न्यायाधिकारी'

होंगा तथा उसकी नियुक्ति के लिए वही योग्यता होंगी जो प्रथम वर्ग के न्यायिक मजिस्ट्रेट की नियुक्ति के लिए निर्धारित है। प्रत्येक ग्राम न्यायालय की अपनी एक मोहर होगी जिसका न्यायालय अपनी कार्यवाहियों में प्रयोग करेगा।

– ग्राम न्यायालय की समस्त कार्यवाहियां और निर्णय, जहां तक व्यवहार्य हो अंग्रेज़ी भाषा के साथ ही राज्य की राजभाषाओं में से किसी एक में होगा।

– ग्राम न्यायालय सिविल और फ़ौजदारी दोनों अधिकारों का प्रयोग निम्नलिखित सीमा तक करेंगे :

दांडिक फ़ौजदारी मामले

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी ग्राम न्यायालय निम्नलिखित किसी परिवाद पर या पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा :

- भारतीय दंड संहिता, 1860 के अधीन दर्ज़ मामले जो मृत्युदंड, आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक अवधि के लिए दंडनीय नहीं है।
- ऐसे छोटे मामले, जैसे– चोरी हुई संपत्ति लेना या अपने पास रखना या उसे छुपाने में मदद करना। जहां चुराई गई वस्तु का मूल्य 20,000 रुपये से अधिक न हो। ऐसे अन्य मामले जैसे संपत्ति की ख़रीद, कृषि भूमि की जोत का मामला, किसी कुएं या नहर से पानी लेने पर हुआ विवाद आदि मामले जो स्थानीय तौर पर ही निपटाए जा सकते हैं, की सुनवाई की जा सकेगी और फ़ैसला दिया जाएगा जिससे जिला न्यायालय तक जाने की नौबत ही न आए। इसके साथ ही ऐसे अन्य मामले जिनमें शांति भंग करने या शांति भंग करने हेतु उकसाने का प्रयत्न करने, जिसमें दो वर्ष से अधिक कारावास का दंड न हो, की भी सुनवाई की जा सकेगी।
- ग्राम न्यायालय में इसके अलावा ऐसे अपराध जो पशु अतिचार अधिनियम की धारा 20 के अधीन परिवाद, मज़दूरी या न्यूनतम मज़दूरी और सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत आने वाले मामले, दंड प्रक्रिया के अध्याय 9 के अनुसार पत्नियों, बालकों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश, बंधित श्रम पद्धति, समान पारिश्रमिक तथा घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण के मामले।
- ग्राम न्यायालय उक्त मामलों के अलावा उन राज्यों के अधीन ऐसे सभी अपराधों पर विचार करेगा जो इस अधिनियम के तहत केंद्रीय या राज्य सरकार समय-समय पर निर्धारित करेगी।

दीवानी मामले

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होगी किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय संहिता के उपबंध जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों के असंगत नहीं हैं, ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में लागू होंगे और ग्राम न्यायालय, सिविल न्यायालय समझे जाएंगे। निम्नलिखित मामले ग्राम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में होंगे :

- **दीवानी विवाद :** संपत्ति क्रय करने का अधिकार, सामान्य चरागाहों का उपयोग, सिंचाई सरणियों से जल लेने का विनियमन और समय से संबंधित विवाद।
- **संपत्ति विवाद :** ग्राम और फार्म हाउस (कब्जा), जलसरणियां, कुएं या नलकूप से जल लेने का अधिकार।
- **अन्य विवाद :** मज़दूरी संदाय अधिनियम के अधीन दावे, न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम के अधीन दावे, व्यापार संव्यवहार या साहूकारी से उद्भूत धन संबंधी वाद।
- भूमि पर खेती में भागीदारी से उद्भूत विवाद,
- ग्राम पंचायतों के निवासियों द्वारा धन उपज के उपयोग के संबंध में विवाद
- इस अधिनियम के अधीन केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित केंद्रीय अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद तथा राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित राज्य अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद।

ग्रामीण न्यायालयों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया

दांडिक फ़ौजदारी मामलों की प्रक्रिया

- न्यायालय दांडिक विचारण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 प्रभावी होगी जब तक कि वे इस अधिनियम के उपबंधों के असंगत न हों। संहिता के उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय होगा।
- न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत समुचित विचारण प्रक्रिया को अपनाएगा, परंतु जब किसी मामले के समुचित विचारण के दौरान न्यायाधिकारी को ऐसा प्रतीत होता है कि उसका संक्षिप्त विचारण करना अवांछनीय है तो न्यायाधिकारी ऐसे किसी साक्षी को पुनः बुलवाकर उसकी सुनवाई कर सकेगा।
- न्यायालय के समक्ष दांडिक कार्यवाही में परिवादी अभियोजन के मामले को प्रस्तुत करने के लिए ग्राम न्यायालय की इज़ाज़त से अपने ख़र्चे पर अपनी पसंद के किसी अधिवक्ता को नियुक्त कर सकेगा। राज्य का विधिक सेवा प्राधिकरण, अधिवक्ताओं का एक पैनल तैयार करेगा और प्रत्येक ग्राम न्यायालय में कम-से-कम दो अधिवक्ता लगाएगा, जिसे ग्राम न्यायालय अधिवक्ता की नियुक्ति करने में असमर्थ लोगों को उपलब्ध कराएगी।
- न्यायालय प्रत्येक मामले में निर्णय, विचारण के समाप्त होने के ठीक पश्चात या 15 दिन के भीतर ऐसे किसी पश्चातवर्ती समय पर जिसकी पूर्व सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाएगा। ग्राम न्यायालय अपने निर्णय की एक-एक प्रति दोनों पक्षकारों को तत्काल निःशुल्क प्रदान करेगा।

दीवानी मामलों की प्रक्रिया

- ग्राम न्यायालय में दीवानी कार्यवाही के मामलों में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की प्रक्रिया ही अपनाई जाएगी जब तक कि कोई उपबंध इस अधिनियम के उपबंधों के असंगत न हो।
- ग्राम न्यायालय में प्रत्येक वाद, दावा या विवाद प्रारूप में, रीति में और एक सौ रुपये तक फ़ीस के साथ प्रस्तुत किए जा सकेंगे।
- ग्राम न्यायालय में जो वाद या दावे प्रस्तुत किए जाएंगे उसमें आवेदन की प्रति के साथ विरोधी पक्षकार को निर्धारित तारीख़ पर विर्निदिष्ट स्थान पर हाज़िर होने और दावे का उत्तर देने के लिए समन जारी किए जा सकेंगे। विरोधी पक्ष द्वारा अपना लिखित कथन दर्ज़ किए जाने के पश्चात ग्राम न्यायालय सुनवाई के लिए तारीख़

नियत करेगा और सभी पक्षकारों को व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से हाज़िर होने की सूचना देगा।

- सुनवाई के दिन ग्राम न्यायालय दोनों पक्षकारों के संबंध में सुनवाई करेगा और जहां विवाद में कोई साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित नहीं है वहां निर्णय सुनाएगा। परंतु जहां साक्ष्य अभिलेख करना अपेक्षित है वहां ग्राम न्यायालय आगे की कार्यवाही करेगा।
- ग्राम न्यायालय आवेदन का निपटारा आवेदन किए जाने की तारीख़ से छह माह की अवधि के भीतर करेगा तथा प्रत्येक वाद में ग्राम न्यायालय निर्णय सुनवाई के समाप्त होने के ठीक 15 दिन के भीतर खुले में सुनाएगा तथा निर्णय की एक-एक प्रति दोनों पक्षों को नि:शुल्क दी जाएगी। ग्राम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एक डिक्री समझा जाएगा और उसका निष्पादन ग्राम न्यायालय द्वारा दीवानी डिक्री के रूप में ही किया जाएगा। परंतु इसका निष्पादन ग्राम न्यायालय नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों पर भी कर सकता है।
- प्रत्येक वाद या कार्यवाही में ग्राम न्यायालय द्वारा प्रथम अवसर पर यह प्रयास किया जाएगा कि वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु के संबंध में किसी समझौते पर पहुंचने में पक्षकारों की सहायता करे, उन्हें मनाए और उनमें सुलह कराए। सुलह कराने के उद्देश्य से यदि न्यायालय यह आवश्यक समझता है कि अगली तारीख़ पर किन्ही विनिर्दिष्ट व्यक्तियों द्वारा उसे सुलझाया जाए तो ग्राम न्यायालय ऐसा करेगा।
- जिला न्यायालय, जिला मजिस्ट्रेट के परामर्श से सुलहकारों के रूप में ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति करेगा जो ग्रामस्तर पर सत्य-निष्ठा रखने वाले ऐसे सामाजिक कार्यकर्ताओं का पैनल तैयार करेगा जिनके पास उच्च न्यायालय द्वारा विहित अहर्ताएं और अनुभव हों राज्य सरकार सुलहकारों को संदेय बैठक फ़ीस, भत्ते व अन्य शर्ते निर्धारित कर सकेगी।
- जिला न्यायालय किसी पक्षकार द्वारा किए गए आवेदन पर या जब किसी एक ग्राम न्यायालय के पास काफी मामले लंबित हों, या जब कभी वह न्याय के हित में ऐसा आवश्यक समझे तो वह किसी ग्राम न्यायालय के समक्ष लंबित किसी मामले को अपनी अधिकारिता के भीतर अन्य ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा।

साक्ष्य

ग्राम न्यायालय साक्ष्य के रूप में ऐसे दस्तावेज़, कथन अथवा सूचना को भी ग्रहण करेगा जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के तहत सुसंगत या ग्राह्य हो। ग्राम न्यायालय में सभी मौखिक साक्ष्य को लेखबद्ध करना आवश्यक नहीं है, किंतु न्यायाधिकारी साक्ष्य का एक सार ज्ञापन लेखबद्ध करेगा जिसपर साक्षी और न्यायाधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किया जाएगा। यह अभिलेख का भाग होगा। यदि कोई साक्ष्य औपचारिक प्रकृति का है तो वह शपथपत्र द्वारा ग्राम न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सकेगा।

ग्रामीण न्यायालयों की स्थापना से ग्रामीणों को सस्ता और सुलभ न्याय शीघ्र प्राप्त होगा। गांवों के सामाजिक कार्यकर्ता/प्रतिष्ठित नागरिकों को न्यायिक प्रक्रियाओं में सुलहकारों के रूप में भागीदारी के अवसर प्राप्त होंगे तथा जिला न्यायालयों पर मामलों का भार घटेगा जो देश की न्याय व्यवस्था में सहायक होगा

अपील

दांडिक मामलों में अपील

ग्राम न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध अपील निर्णय के तीस दिन के भीतर संबंधित सेशन न्यायालय में हो सकेगी। परंतु यदि मामले में केवल एक हज़ार रुपये तक का जुर्माना हो या अभियुक्त ने स्वयं अपना दोष स्वीकार कर लिया हो तो ऐसी स्थिति में अपील नहीं की जा सकेगी।

दीवानी मामलों में अपील

ग्राम न्यायालय का प्रत्येक निर्णय या आदेश जो आवर्ती आदेश नहीं है, की अपील संबंधित जिला न्यायालय में हो सकेगी परंतु यदि दोनों पक्षकार अपील न करने के लिए सहमत हों या वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रक़म एक हज़ार रुपये से अधिक नहीं है तो अपील नहीं हो सकेगी।

परंतु किसी दावे में रक़म का मूल्य पांच हज़ार रुपये से अधिक है वहां कानून के किसी विशेष प्रश्न के आधार पर अपील की जा सकती है।

ग्राम न्यायालयों से लाभ

- ग्राम न्यायालयों की स्थापना ग्रामवासियों और ग्राम पंचायतों के लिए एक महत्वपूर्ण व्यवस्था होने के साथ-साथ ग्रामवासियों के समय और धन की बचत भी करता है। इसे ज़िला न्यायालयों में विधिक और तकनीकी कठिनाइयों से बचकर अपने निकटतम ग्राम न्यायालय से सुगम, सुलभ और तत्काल न्याय प्राप्त करने का एक कारगर क़दम कहा जा सकता है। इससे देश की न्याय व्यवस्था में एक क्रांतिकारी अध्याय जुड़ा है जो आम नागरिकों के लिए हितकर है। आर्थिक रूप से भी ग्राम न्यायालय अधिक उपयोगी है क्योंकि इसमें वाद प्रस्तुत करने के लिए न्यायालय शुल्क अधिकतम सौ रुपये तक ही है। इसके अलावा ज़िला न्यायालयों और उच्च न्यायालयों में अधिवक्ताओं को नियुक्त करने में जो धन व्यय होता है वह इन न्यायालयों में नहीं होता।
- ज़िला न्यायालयों और उच्च न्यायालयों में वाद या मामले फाइल करने के लिए अधिकतर केवल अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग होता रहा है तथा न्यायालयों के निर्णय भी अंग्रेज़ी भाषा में होते हैं जिसे अधिकतर ग्रामवासी ठीक से न पढ़ सकते है न समझ सकते हैं। परंतु अब ग्राम न्यायालयों के वाद, आवेदन और निर्णय के लिए राज्य की राजभाषा का प्रयोग किया जा सकेगा जिससे ग्रामवासी उसे पढ़ और समझ सकेंगे और जो न्यायालय में दोनों पक्षों के बीच विचारण होगा उसे भलीभांति समझ सकेंगे। यह ग्रामीणों के लिए हितकर है। भविष्य में इसके बहुत अच्छे परिणाम आने की संभावना है। ग्रामीण न्यायालयों की स्थापना से ग्रामीणों को सस्ता और सुलभ न्याय शीघ्र प्राप्त होगा। गांवों के सामाजिक कार्यकर्ता/प्रतिष्ठित नागरिकों को न्यायिक प्रक्रियाओं में सुलहकारों के रूप में भागीदारी के अवसर प्राप्त होंगे तथा जिला न्यायालयों पर मामलों का भार घटेगा जो देश की न्याय व्यवस्था में सहायक होगा। ❑

(लेखक अधिवक्ता हैं)

टाइफाइड ज्वर

● राकेश सिंह

टाइफाइड बुख़ार एक संक्रामक रोग है। इसे मियादी बुख़ार या मोतीझरा भी कहा जाता है। यह साल्मोनैला टाइफी नामक जीवाणु द्वारा होता है तथा दूषित जल तथा भोजन द्वारा फैलता है। रोगी का मल व मूत्र रोग के संक्रमण के मुख्य स्रोत हैं। वैसे तो यह रोग पूरे विश्व में पाया जाता है परंतु भारत में यह अत्यंत गंभीर दशा में देखने को मिलता है। पश्चिमी देशों में यह रोग निरंतर कम होता जा रहा है जिसका मुख्य कारण वहां की सुचारू जल वितरण व्यवस्था तथा उचित सैनीटेशन है।

टाइफाइड बुख़ार किसी भी आयु वर्ग के व्यक्ति को हो सकता है, परंतु इसके संक्रमण का साधारणत: आयु वर्ग 10 से 30 वर्ष है। यह रोग, एक रोगी से स्वस्थ मनुष्य में सीधे रोगी के मल या मूत्र के संपर्क में आने से हो सकता है अथवा उसके द्वारा उपयोग में लाया गया बिस्तर, तौलिया आदि के उपयोग करने से भी फैलता है। इसी प्रकार दूषित जल, भोजन, दूध एवं दूषित जल से धोई गई सब्ज़ियां भी इस रोग को स्वस्थ मनुष्य में फैलाती हैं। दूषित बर्फ़ तथा आईसक्रीम के माध्यम से भी इस रोग के जीवाणु स्वस्थ मनुष्य तक फैलते हैं। मक्खियां जब रोगी के मल या मूत्र पर बैठती हैं तो उनके शरीर पर टाइफाइड के जीवाणु चिपक जाते हैं, इसके बाद जब वे भोजन या अन्य खाद्य पदार्थों पर बैठती हैं तो उनके शरीर से चिपका जीवाणु उसमें आ जाता है। अगर ऐसे दूषित भोजन का सेवन कोई स्वस्थ मनुष्य कर ले तो उसमें इस रोग का संक्रमण हो सकता है। गंदे नालों, पोखरों, तालाबों में टाइफाइड के जीवाणु पनप सकते हैं। अत: वे फल एवं कच्ची सब्जियां, जो इस पानी से धोए जाते हैं अगर उसका इस्तेमाल बिना पकाए किया जाता है तो उससे भी टाइफाइड रोग फैलता है। इन सभी माध्यमों से, टाइफाइड के जीवाणु एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर में पहुंचता है। इन जीवाणुओं का विकास मुख्यत: मनुष्य की छोटी आंत में होता है। छोटी आंत में ये जीवाणु बहुत तेज़ी से पनपते हैं तथा आंत की दीवार को नुक़सान पहुंचाते हुए लिम्फ कोशिकाओं में चले जाते हैं। लिम्फ कोशिकाओं द्वारा यह रक्त प्रणाली के अंदर प्रविष्ट हो जाते हैं और रक्त द्वारा ये जीवाणु शरीर के सभी अंगों में पहुंच सकते हैं। टाइफाइड के जीवाणु एक ज़हरीले पदार्थ का स्राव करते हैं, जिसे एण्डोटॉक्सिन कहा जाता है।

टाइफाइड रोग अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग प्रकार के लक्षणों द्वारा प्रकट होता है। जिन लोगों के शरीर की प्रतिरोधक क्षमता ज्यादा होती है उनमें यह रोग केवल साधारण ज्वर के रूप में होता है। कई बार यह ज्वर एक सप्ताह या इससे अधिक समय के लिए हो सकता है। ज्वर का ताप दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है और यदि इस बुख़ार को ग्राफ पेपर पर अंकित करें तो यह सीढ़ियों के आकार की भांति प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त रोगी को सिरदर्द, कमज़ोरी, भूख न लगना आदि शिकायतें भी हो सकती हैं। कुछ रोगी पेट की गड़बड़ी, खट्टे डकार तथा कब्ज़ की शिकायत भी करते हैं। सूखी खांसी तथा नकसीर (नाक से खून आना) भी कुछ रोगियों में देखा गया है।

अन्य रोगियों में (जिनमें यह रोग अपनी गंभीर अवस्था में देखा गया है) ज्वर बहुत तेज़ी से चढ़ता है। रोगी अत्यंत कमज़ोरी का अनुभव करता है। अनेक प्रकार की दिमाग़ी परेशानियां भी ऐसे रोगी में देखी गई हैं। पेट में तेज़ दर्द, पेट फूलना तथा दस्त की शिकायत भी रोगी को हो सकती है। बीमारी के दूसरे सप्ताह में कई रोगियों में पेट व छाती की त्वचा पर लाल धब्बे भी देखे गए हैं। ज़िगर और तिल्ली का आकार बढ़ जाता है। इस बीमारी से कई रोगियों में पीलिया तथा गुर्दों की समस्या भी देखी गई है। इसी प्रकार कुछ रोगियों में आंत से भयंकर रक्तस्राव तथा आंत का फट जाना भी देखा गया है। टाइफाइड के ये जीवाणु मस्तिष्क पर संक्रमण करके मस्तिष्क ज्वर भी उत्पन्न कर सकते हैं। हड्डियों के संक्रमण के कारण अनेक प्रकार की हड्डी की बीमारियां भी रोगी को हो सकती हैं। अगर इस रोग का ठीक ढंग से इलाज़ न किया जाए तो रोगी की मृत्यु हो सकती है। मृत्यु का मुख्य कारण टायफाइड जीवाणुओं द्वारा स्रावित ज़हरीला पदार्थ 'एण्डोटॉक्सिन' का पूरे शरीर में फैल जाना है। यह शरीर की कार्य प्रणाली को क्षति पहुंचाकर उसे पूरी तरह से अक्षम कर देता है।

बचाव : टाइफाइड एक पूर्ण रूप से बचाई जा सकने वाली बीमारी है। अगर थोड़ी-सी सावधानियां दिन-प्रतिदिन की कार्यशैली में बरती जाएं तो इस रोग से पूरी तरह से बचाव संभव है। हमें चाहिए कि हम दूषित जल और भोजन का सेवन कदापि न करें। हो सके तो पानी को उबाल कर फिर ठंडा करके पिएं। बना हुआ भोजन, ताज़ा ही उपयोग में लाएं। तालाब, नदी, पोखर आदि का पानी न पिएं। दूध को हमेशा उबाल कर उपयोग में लाएं। बाज़ार में बिक रही बर्फ़ कभी न खाएं और न ही इसे पानी में डालकर पिएं। अगर आवश्यक हो तो ऐसी बर्फ़ के ऊपर साफ़ पानी से भरा बर्तन रख कर पानी ठंडा करें। अच्छी कंपनी की आइसक्रीम का ही सेवन करें। फल और कच्ची सब्ज़ियां खाने से पहले साफ़ पानी से अच्छी तरह धोएं।

बाज़ार में बिक रहे कटे फल कभी न खाएं। भोजन करने से पहले अपने हाथों को साबुन से अच्छी तरह से धोएं। रोगी खुले स्थान पर शौच न करें और न ही किसी तालाब, पोखर आदि में डालें। रोगी के द्वारा उपयोग में लाए गए वस्त्रों को गर्म पानी में धोएं। खाद्य पदार्थों पर मक्खियों को कदापि न बैठने दें। खाद्य पदार्थों को हमेशा ढक कर रखें।

टाइफाइड ज्वर से पीड़ित रोगी को, जब तक वह पूरी तरह से स्वस्थ न हो जाए, अलग कमरे में रखना चाहिए। अगर हो सके तो अस्पताल में दाखिल करवा दें। उसके मल-मूत्र विसर्जित करने की जगह पर एंटीसेप्टिक (जीवाणु नाशक) दवा डालें।

एक साल से ऊपर की आयु के व्यक्ति को टाइफाइड रोग से बचाव के लिए रोग रक्षक टीके लगवाए जा सकते हैं। ये टीके इस रोग के बचाव में शत-प्रतिशत तो सफल नहीं होते लेकिन इनके उपयोग से रोग की गंभीरता को कम किया जा सकता है। अस्पताल में काम करने वाले व्यक्तियों, क्लीनिकल प्रयोगशालाओं में कार्यरत कर्मचारियों तथा जो लोग हाई रिस्क ग्रुप के अंतर्गत आते हैं, उन्हें ये रोगरक्षक टीके अवश्य लगवाने चाहिए। आजकल इन टीकों की जगह रोग-रक्षक कैप्सूल भी बाज़ार में उपलब्ध हैं। ये आंत की तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं ताकि टाइफाइड के प्रकोप को समाप्त किया जा सके।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा ही इस रोग के बचाव में मुख्य भूमिका निभाती है। इसलिए हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह इस रोग से बचाव के साधनों के बारे में जागरूक हो ताकि अपने आपको तथा समाज को इस गंभीर रोग से बचा सके। ❑

(लेखक एस्कॉर्ट अस्पताल एंड रिसर्च सेंटर, फरीदाबाद के मुख्य चिकित्सा अधिकारी व कंसल्टेंट हैं।

ई मेल : rakesh.singh@fortishealthcare.com)

ग़रीबी रेखा के संबंध में तेंदुलकर समिति की सिफ़ारिशें

- निर्धनता के अनुमान राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) द्वारा संग्रहीत भारतीय परिवारों के निजी पारिवारिक उपभोक्ता व्यय संबंधी आंकड़ों पर आधारित होंगे।
- कैलोरी की खपत को ग़रीबी रेखा का मानदंड बनाने से बचना होगा।
- चूंकि स्मरण आधार पर पारिवारिक व्यय का हिसाब लगाने के लिए एनएसएसओ ने भविष्य में अपने खपत संबंधी सभी सर्वेक्षणों में एमआरपी के आधार पर अनुमान लगाने पर विचार किया है, इसलिए भविष्य में ग़रीबी रेखा के आधार के रूप में यूआरपी अनुमानों का प्रयोग करने वाली पिछली पद्धति के बजाय खपत व्यय के एमआरपी आधारित अनुमानों को अपनाना होगा। इस परिवर्तन से निर्धन परिवारों की कम खरीद वाली मदों के संबंध में पारिवारिक खपत व्यय के आंकड़ों को अनुमान अधिक संतोषजनक ढंग से लगाया जा सकेगा।
- 25.7 प्रतिशत शहरी हेडकाउंटर अनुपात के तदनुरूप शहरी गरीबी रेखा समूह (पीएलबी) के समतुल्य एसआरपी को उसमें उपयुक्त समायोजन करके सभी राज्यों के ग्रामीण तथा शहरी जनसमुदाय के लिए एक नये संदर्भ पीएलबी के तौर पर मुहैया कराया जाएगा।
- प्रस्तावित संदर्भ पीएलबी में मूल्य सूचकांक तैयार करने के प्रयोजन से उपभोग की सभी मदों (ढुलाई और वाहन को छोड़कर) को ध्यान में रखा जाता है। सिफ़ारिश की गई गरीबीरेखा में दुलाई और वाहन पर निजी व्यय के लिए अलग से भत्ते का प्रावधान है।
- प्रस्तावित मूल्य सूचकांक राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के 61वें दौर (जुलाई 2004 से जनू 2005 तक) में उपलब्ध खाद्य, ईंधन और प्रकाश, परिधान एवं जूतों के संबंध में पारिवारिक उपभोग के अलग-अलग ब्यौरेवार व्यय के पारिवारिक स्तर के यूनिट मूल्यों (मूल्यों के अनुमानित आंकड़ों) पर आधारित है और इसलिए ग्रामीण और शहरी इलाकों में उपभोक्ताओं द्वारा अदा की गई वास्तविक क़ीमतों के काफी निकट है। स्वास्थ्य और शिक्षा के मूल्य सूचकांक भी संबंधित राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के यूनिट स्तर के आंकड़ों से प्राप्त किए गए थे। प्रस्तावित मूल्य सूचकांक (तकनीकी रूप में फिशर आदर्श सूचकांक) में मूल्य सूचकांकों की भारित संरचना में अपनाई गई अखिल भारतीय एवं राज्यस्तरीय दोनों उपभोग पद्धतियों को शामिल किया गया है। भाड़े और वाहन के लिए इन मदों पर व्यय की हिस्सेदारी को प्रत्येक राज्य के संबंध में ग़रीबी रेखा के समायोजन के लिए प्रयोग में लाया गया।
- नयी गरीबी रेखा में यह प्रयास किया गया है कि राज्यों की ग्रामीण तथा शहरी आबादी राज्य के अंतर्गत ग्रामीण और शहरी तथा अंतरराज्यीय विभेदों (ग्रामीण और शहरी) जिनमें अखिल भारतीय और राज्य स्तर दोनों स्तरों पर देखी गई उपभोक्ता प्रवृत्ति को शामिल किया गया है, को उचित रूप से ध्यान में रखते हुए सिफ़ारिश की गई अखिल भारतीय शहरी पीबीएल से सहमत हो।
- सिफ़ारिश की गई प्रक्रिया का प्रयोग करते हुए अखिल भारतीय ग्रामीण हेडकाउंट अनुपात और अखिल भारतीय संयुक्त हेडकाउंट अनुपात 28.3 प्रतिशत और 27.5 प्रतिशत के सरकारी अनुमानों की तुलना में क्रमशः 41.8 प्रतिशत और 37.2 प्रतिशत है। वर्ष 1993-94 में अखिल भारतीय स्तर पर निर्धनता ग्रामीण इलाकों में 50.1 प्रतिशत, शहरी इलाकों में 31.8 प्रतिशत और पूरे देश में 45. 3 प्रतिशत है जबकि 1993-94 के सरकारी अनुमानों के अनुसार 37.2 प्रतिशत ग्रामीण, 32.6 प्रतिशत शहरी और 36.0 प्रतिशत संयुक्त हैं। इस प्रकार, यद्यपि सुझाई गई नयी प्रणाली में वर्ष 2004-05 के अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण और ग्रामीण शहरी संयुक्त हेडकाउंट अनुपात के अपेक्षाकृत ऊंचे अनुमान प्रस्तुत किए गए हैं लेकिन तुलनीय प्रतिशतांक के रूप में निर्धनता में कमी की मात्रा में 1993-94 और 2004-05 के बीच हुई गिरावट के आंकड़े पुरानी प्रणाली का प्रयोग कर आकलित आंकड़ों से ज्यादा भिन्न नहीं है। ❑

ख़बरों में

● इसी वित्त वर्ष में मिलेगी रुपये को पहचान

भारतीय रिज़र्व बैंक की डिप्टी गवर्नर उषा थोराट की अध्यक्षता वाली एक समिति ने करीब 4,000 प्रविष्टियों में से पांच को रुपये का निशान बनाने के लिए छांटा है। इनमें से किसी एक के डिजाइन पर ही अंतिम मुहर लगेगी और विजेता के नाम का एलान कर दिया जाएगा वित्त मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी का कहना है, ''आरबीआई ने अपनी सिफ़ारिशें सौंप दी हैं लेकिन अभी तक इस पर वित्त मंत्रालय के साथ-साथ कैबिनेट की मुहर लगना बाकी है। इस प्रक्रिया में दो से तीन महीने का वक्त लग सकता है।''

अधिकारी का यह भी कहना है कि अधिकारिक तौर से इसकी शुरुआत में और भी वक्त लग सकता है क्योंकि नये चिह्न के लिए सॉफ्टवेयर की भी ज़रूरत होगी। इसके अलावा इस पर भी फैसला लिया जाना है कि करेंसी नोट और सिक्कों पर भी उसका इस्तेमाल किया जाना चाहिए या नहीं।

रुपये का चेहरा

यहां दिए गए प्रतीक चिह्नों के डिज़ाइन आर्थिक समाचार का *बिज़नेस स्टैंडर्ड* की डिज़ाइन टीम ने तैयार है। यह प्रतियोगिता सभी भारतीय नागरिकों के लिए थी। जिसका डिज़ाइन चुना जाएगा, उसे बतौर विजेता, 2,50,000 रुपये का नकद पुरस्कार दिया जाएगा।

जिन पांच डिजाइनरों के डिजाइन को अंतिम पांच में चुना गया है कुछ दिनों पहले उनका साक्षात्कार भी हो चुका है। इन सभी डिजाइनरों की पृष्ठभूमियां काफी अलग हैं। इनमें से दो तो पेशेवर डिजाइनर हैं जबकि एक आईआईटी मुंबई में इंडस्ट्रियल डिजाइन में पीएचडी के छात्र हैं। बाकी में एक एमआईटी से प्रशिक्षण ले चुके आर्किटेक्ट तो दूसरे थैलासेरी के एक हाईस्कूल में कंप्यूटर अध्यापक हैं।

इन सभी को 25,000 रुपये की राशि दी गई है और विजेता को 2.5 लाख रुपये दिए जाएंगे। इनमें से जितेश पदम्शाली, शाहरुख जे. ईरानी, डी.उदय कुमार और नंदिता कोरिया मेहरोत्रा मुंबई से ताल्लुक रखते हैं जबकि शिबिन के. केरल में अध्यापक हैं। यह प्रतियोगिता 15 अप्रैल, 2009 को बंद हो गई थी। इसमें सभी भारतीय नागरिकों को शामिल होने की छूट दी गई थी।

डॉलर, पाउंड, येन और यूरो जैसी दुनिया के दूसरे देशों की मुद्राओं के पास अपना खास चिह्न है और अभी तक रुपया इस मामले में पिछड़ा रहा है। भारतीय रुपये को वैश्विक बाज़ारों में अंग्रेजी में आरएस या फिर आईएनआर (इंडियन नेशनल रुपीज़) कहा जाता है लेकिन चिह्न मिलने पर उसे भी पहचान मिल जाएगी।

● अर्थशास्त्री के. एन. राज का निधन

विख्यात अर्थशास्त्री और पद्मविभूषण पुरस्कार से सम्मानित डॉ. के. एन. राज अब हमारे बीच नहीं रहे। वह 86 वर्ष के थे।

श्री राज का जन्म 13 मई, 1924 को तमिलनाडु में कोझिकोड के नजदीक इंराजीपलम में हुआ था। उन्होंने 1944 में मद्रास विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा प्राप्त की और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह लंदन चले गए। वहां उन्हें 1947 में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से पीएचडी की उपाधि हासिल की। उसके बाद उन्होंने कोलंबो में कुछ समय तक एक समाचार पत्र में भी काम किया और फिर बाद में वह भारतीय रिज़र्व बैंक के साथ जुड़ गए।

स्व. राज ने भुगतान संतुलन की गणना में अपनी एक खास पहचान बनाई। वह दिल्ली विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर रहे और 1969 वे कुलपति नियुक्त किए गए। दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स की नींव रखने का श्रेय भी उन्हें जाता है। राज कई सरकारी समितियों, जैसे कृषि आयकर समिति और स्टील मूल्यनिर्धारण समिति के सदस्य भी रहे।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी उन्होंने विभिन्न मोर्चों पर काम किया। राज ने संयुक्त राष्ट्र विकास एवं योजना समिति, एफएओ, आईएलओ के सदस्य के तौर पर भी अहम योगदान दिया। उन्होंने विभिन्न आर्थिक मुद्दों से जुड़े कई मसलों पर दर्जनों किताबें और लेख लिखे। राज ने पूर्व प्रधानमंत्री पीवी नरसिंह राव के आर्थिक सलाहकार के तौर पर भी काम किया।

● इला रमेश भट्ट को निवानो शांति पुरस्कार

मशहूर समाज सेविका इला रमेश भट्ट को जापान के इस साल के प्रतिष्ठित निवानो शांति पुरस्कार के लिए चुना गया है। सुश्री भट्ट को यह पुरस्कार भारत में ग़रीब महिलाओं के उत्थान में अहम योगदान के लिए चुना गया है।

सुश्री भट्ट पिछले तीन दशकों से भी अधिक समय से भारत में दबी-कुचली एवं ग़रीब महिलाओं के विकास के लिए काम कर रही हैं। आगामी 13 मई को उन्हें इस पुरस्कार से सम्मानित किया जाएगा। इस पुरस्कार के लिए उनके नाम की घोषणा करते हुए समिति ने कहा कि सुश्री भट्ट की समाजसेवा हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है। गौरतलब है कि उन्होंने 1972 में सेल्फ एम्प्लायड वुमन एसोसिएशन-'सेवा' नामक एक संगठन की स्थापना की थी और उसके जरिये महिलाओं को सम्मानजनक व उपार्जक स्वरोज़गार और प्रशिक्षण प्रदान करती रहीं। वह राज्यसभा की सदस्य भी रह चुकी हैं।

● क्रिकेट के एवरेस्ट पर सचिन

रिकॉर्डों के बादशाह सचिन तेंदुलकर ने अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट में पिछले दिनों नया इतिहास रचते हुए एक दिवसीय मैचों में दोहरा शतक जमाने वाले दुनिया के पहले बल्लेबाज बनने का गौरव हासिल किया। इस महान बल्लेबाज ने पिछले दिनों संपन्न भारत-दक्षिण अफ्रीका एकदिवसीय क्रिकेट शृंखला में दक्षिण अफ्रीका के ख़िलाफ़ दूसरे एक दिवसीय अंरराष्ट्रीय क्रिकेट मैच के दौरान 200 रन का जादुई आंकड़ा छुआ जहां तक इससे पहले दुनिया का कोई भी बल्लेबाज नहीं पहुंचा था। ख़चाख़च भरे स्टेडियम में वह 200 रन बनाकर नाबाद रहे। सचिन की पारी के दम पर भारत ने दक्षिण अफ्रीका के ख़िलाफ़ दूसरे वनडे मैच में 153 रन की रिकॉर्ड जीत के साथ तीन मैच की शृंखला 2-1 से जीत ली।

उनके दोहरे शतक पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए पूर्व कप्तान सुनील गावस्कर ने कहा कि तेंदुलकर ने खुद को सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज साबित कर दिया है। उन्होंने कहा, ''इस बारे में कोई दो राय नहीं कि वह क्रिकेट जगत के सबसे महान खिलाड़ी हैं।'' ❑

मानवाधिकार : नयी दिशायें

● ब्रजेश कुमार

पुस्तक : मानव अधिकार – नई दिशाएं;
संपादक : जगदीश प्रसाद मीणा;
प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, फ़रीदकोट हाउस, कोपरनिकस मार्ग, नयी दिल्ली-110001

पुस्तकों और पत्रिकाओं के प्रति बाज़ार में अब यह भ्रांतियां फैलाई जा रही हैं कि अब पुस्तकों और पत्रिकाओं के पाठक वर्ग का अभाव है, लेकिन सामग्री यदि व्यापक पैमाने पर लोगों की ज़िंदगी से जुड़ी हो तो उसे पाठकों का अभाव नहीं रहता। पाठक खोजकर ऐसी सामग्री पढ़ता है। ऐसी ही पठनीय सामग्री समेटे है *मानवाधिकार : नयी दिशाएं* नामक हिंदी पत्रिका का ताज़ा अंक। लगभग 16 आलेख, एक साक्षात्कार तथा महत्वपूर्ण मानवाधिकारवादी कहानियों के साथ इस अंक का कलेवर सिर्फ़ अच्छा ही नहीं बल्कि सामग्री पठनीयता के हिसाब से भी महत्वपूर्ण भी है। इसमें दो पुस्तकों– *सूचना का अधिकार एक कारगर हथियार* तथा *राज्य की अभिरक्षा और मानव अधिकार* की समीक्षाएं भी की गई हैं। लगभग 176 पृष्ठों वाली इस पत्रिका में यह कोशिश है कि मानवाधिकारों के विभिन्न पक्षों पर रोशनी डाली जाए और भारतीय अवाम को अपनी भाषा के माध्यम से जागरूक किया जाए।

23 अक्तूबर, 1945 को महात्मा गांधी ने कहा था, ''न्याय में जितनी उदारता की ज़रूरत है, इतनी ही न्याय की उदारता में है'', इस वार्षिक पत्रिका (अंक : 6) का सबसे महत्वपूर्ण आलेख राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के कार्यकारी अध्यक्ष न्यायमूर्ति जी.पी. माथुर का है जिन्होंने सभी को सूचना के अधिकार से संपृक्त करने का प्रयास किया। न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोटी सूचना का अधिकार तथा मानव अधिकार के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कहते हैं– मानव अधिकारों के प्रति हमारा विश्वास और आदर भाव होना चाहिए।

आमुख में आयोग के सदस्य पी.सी. शर्मा लिखते हैं कि ''व्यक्ति के चतुर्मुखी विकास के लिए जिन अनुकूल एवं महत्वपूर्ण स्थितियों की आवश्यकता होती है उसी संपूर्णता का नाम मानव अधिकार है।'' वृजेंद्र त्रिपाठी की मानवाधिकारवादी कहानियों से इस पत्रिका में साहित्यिक झलक भी चोखी हो गई है और पत्रिका को पाठक रुचि लेकर पढ़ेंगे, इसमें कोई दो मत नहीं।

अंक में चमन लाल का आलेख 'आजीवन कारावास और समता का मूल अधिकार' पढ़कर विभिन्न जहां राज्यों की झलक मानवाधिकारों की दृष्टि से मिलती है वहीं प्रो. गिरीश्वर मिश्र के आलेख 'मानव अधिकारों का अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य' से कुछ अंतरराष्ट्रीय पहलू भी उभरकर सामने आए हैं। विश्व में फैली बालश्रम की समस्या पर सुभाष शर्मा का आलेख केंद्रित है। अर्धसैनिक बल के प्रश्न को राजेश प्रताप सिंह ने उठाया है। एन. सुंदरम् ने तमिल साहित्य में मानवाधिकारों की खोजबीन की है तो सुमन बंसल ने प्रेमचंद के बहाने सामाजिक मानवाधिकारों को देखा है। कुंवर विजय प्रताप सिंह ने कैदियों पर ध्यान केंद्रित किया है। वह कहते हैं कि ''उन्हें भी शिक्षा का हक है। प्रो. शिवदत्त शर्मा, डॉ. प्रीति सक्सेना ने भी सूचना के अधिकार के प्राकृतिक प्रणाली की ओर हमारा ध्यान केंद्रित किया है। डॉ. प्रतिभा ने गांधीवादी चिंतन के मानवाधिकारी पक्ष को उल्लेखित किया है।

पत्रिका में कुछ अन्य आलेख भी शामिल हैं जिसमें मानवाधिकारों के हनन के क्रूर पक्ष के बारे में, महिलाओं व बच्चों के अवैध व्यापार की सच्चाई उभरकर सामने आई है। मीडिया के सवालात और उनमें मानवाधिकारवादी चरित्र पर अरविंद कुमार सिंह ने अपनी दृष्टि रखी है तो सबको शिक्षा के अधिकार पर आलोक चौरसिया ने अपना आलेख प्रस्तुत किया है। आलोक यादव हमारा ध्यान ग्रामीण जनता के मानवाधिकार की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं।

पत्रिका अपने मूल रूप में ऐसी सामग्रियों से संपृक्त की गई है जिससे पाठक की रोचकता भी बनी रहे और लोगों में मानवाधिकारों को जानने-समझने की रुचि जग सके। पत्रिका में उपलब्धियों के साथ जो कुछ कमियां खलती हैं वह है कुछ महत्वपूर्ण विषयों का अभाव, जैसे जेंडर के मानवाधिकार और सीमावर्ती क्षेत्र के नागरिकों के अधिकार पर पिछले कई वर्षों में सामग्री नहीं प्रकाशित की गई है।

पत्रिका में शामिल पठनीय सामग्री को देखते हुए इस पत्रिका को अब मासिक अथवा कम से कम त्रैमासिक कर देना जाना चाहिए। फिलहाल आयोग की इस कोशिश की जितनी तारीफ़ की जाए कम है और पत्रिका के बारे में जितना लिखा जाए कम है। ❑

(समीक्षक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

रोज़गार समाचार

साप्ताहिक

क्या आप सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम/कर्मचारी चयन आयोग/संघ लोक सेवा आयोग/ रेलवे भर्ती बोर्ड/सशस्त्र सेनाओं/बैंकों में रोज़गार तलाश रहे हैं?

रोजगार समाचार आपका श्रेष्ठ मार्गदर्शक है। यह विगत तीस वर्षों से नौकरियों के लिए सबसे अधिक बिकने वाला साप्ताहिक है। आप भी इसके सहभागी बनें।

आपका हमारी वेबसाइट: *employmenteews.gov.in* पर स्वागत है, जो कि

- नवीनतम प्रौद्योगिकी से विकसित है।
- उन्नत किस्म के सर्च इंजिन से युक्त है।
- आपके प्रश्नों का विशेषज्ञों द्वारा शीघ्र समाधान करती है।

रोज़गार समाचार/एम्प्लाएमेंट न्यूज की प्रति के लिए निकटतम वितरक से संपर्क करें।

व्यापार संबंधी पूछताछ के लिए संपर्क करें :

रोज़गारसमाचार, पूर्वीखण्ड4, तल5, रामकृष्णपुरम, नईदिल्ली।

फोन : 26182079, 26107405, ई–मेल : enabm sa@yahoo.com

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रकाशक व मुद्रक वीना जैन, अपर महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिये ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई–46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस–2, नयी दिल्ली–110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली–110 003 से प्रकाशित। संपादक : राकेशरेणु

Licenced under U (DN)-53/09-11
पंजी सं. 951/57
R.N.951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2009-11 तथा डाक व्यय की पूर्व अदायगी के बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2009-11 Licenced to post without pre-payment at RMS, Delhi
26 मार्च, 2010 को प्रकाशित • 29-30 मार्च, 2010 को डाक द्वारा जारी

Newly Released

Code 1494 Rs. 310.00

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग
प्रारम्भिक परीक्षा
सामान्य अध्ययन
(विषयवार व्याख्यात्मक उत्तरों सहित)

साथ में
नि:शुल्क
पुस्तिका

यह पुस्तक विषय विशेषज्ञों द्वारा संकलित की गई एक सम्पूर्ण एवं अपरिहार्य अध्ययन सामग्री का अद्भुत स्रोत है. प्रतियोगिता दर्पण के सम्पादक मण्डल का पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक के अध्ययनोपरांत सिविल सेवा परीक्षाओं में अभ्यर्थियों की सफलता सुनिश्चित हो जायेगी.

अन्य उपयोगी पुस्तकें

ऐच्छिक विषय
सॉल्वड् पेपर्स

(व्याख्यात्मक उत्तरों सहित)

Code 1452 Rs. 75.00

Code 1450 Rs. 85.00

Code 1451 Rs. 58.00

Code 1453 Rs. 95.00

उपकार प्रकाशन
E-mail : publisher@upkar.in
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282 002 फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
ब्रांच ऑफिस : 4845, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2, फोन : 23251844/66

YH-4/10/2